फाँसी !

फाँसी !

पाँच हफ्ते से केवल यही चिन्ता कर रहा हूँ। दिन-रात मैं अकेला रहता हूँ। अकेला ही मृत्यु का ठंडा स्पर्श अनुभव कर रहा हूँ। मेरे गले को मानों किसीने रस्सी से बाँध रक्खा है !

लेकिन हमेशा से मैं ऐसा नहीं था। अभी बहुत दिन न हुए होंगे, मैं भी एक साधारण मनुष्य की भाँति ही था। प्रति दिन, प्रति घण्टे, प्रति मुहूर्त्त में स्वाधीन रहता था। मेरा मन भी ऐसा ही स्वाधीन था। मेरा तरुण निर्मल मन एक नशे में विभोर रहता था। नियमहीन, शृंखलाहीन, बाधाहीन जीवन की कल्पना मुझे उन्मत्त बना देती थी।

सुन्दरी किशोरियाँ, जय-पराजय, आनंद और उज्ज्वल रंग-शालायें, संध्या की छाया में सुकुमारियों के बाहु-बंधन में स्वप्नमय परिक्रमण—ऐसे ही सुख के साथ मेरे दिन कटते थे। चिन्ता की गति थी स्वाधीन; और स्वयं तो स्वाधीन था ही!

परन्तु आज? आज मैं क़ैदी हूँ। सांकलों में जकड़ा हुआ, क़ैदख़ाने का रहनेवाला क़ैदी हूँ। मन के भीतर भी वैसाही अन्धकार है, जैसा कि इस क़ैदख़ाने के अंदर। एक भीषण, निष्ठुर हत्या-कलंक की कालिमा मुझको घेरे हुए है। अब और कोई चिन्ता मन में नहीं उठती। केवल एक चिन्ता दिन-रात मन में जाग रही है—फाँसी की रस्सी से मेरा प्राण-दण्ड!

अ-शरीरी छाया की भांति यही चिंता मुझे घेरे हुए है। और किसी बात को सोचने का अवसर ही कहाँ? मैं तो चाहता हूँ कि मैं भूल जाऊँ—परन्तु, हाय, सब व्यर्थ है! उसके कठिन स्पर्श से एक मिनट को निस्तार नहीं मिलता।

लाल आँखें निकाल कर मानों दिन-रात वह मेरी ही ओर देख रही है। मेरे चारों ओर न जाने कौन विषाद-रागिनी गाता रहता है और कभी-कभी किसीकी तीव्र

हँसी बिजली की भाँति मेरी आँखों के सामने खिल उठती है। कारागृह की खिड़की के उधर;—ऐं······! वह किसकी आँखें हैं? मौत की! प्रेत की भांति वह मेरे चारों ओर घूम रही है! हाथ में रस्सी···! नः, मैं पागल हो जाऊँगा।

अकस्मात नींद टूट गई—मालूम हुआ है, किसी ने अभी-अभी मेरे मुख पर से अपनी दृष्टि हटाली। क्या यह स्वप्न है? जेलखाने के कठिन पत्थरों पर, दीप की क्षीण शिखा में, पहरेदारों की नीरव मूर्ति में, खिड़की के किनारे-किनारे—न जाने कौन घूमता रहता है। उसकी ज़बान पर केवल वही एक शब्द—फाँसी!

अगस्त का महीना है। निर्मल, स्निग्ध और सुन्दर प्रभात है। आज तीन दिन हुए, मेरा विचार शुरू हुआ है। इन्हीं तीन दिन के अन्दर मेरा नाम चारों ओर मशहूर हो गया है। आलसियों के दल—जिन्हें काम से एक मिनट की फ़ुर्सत नहीं मिलती—आज मुझे देखने के लिए अदालत के आँगन में भीड़ किये खड़े हैं। मृत देह के चारों ओर जिस प्रकार गिद्ध लोलुप दृष्टि से डटे रहते हैं, उसी प्रकार वे भी मेरे लिए आज चंचल और अधीर हो रहे हैं।

पहरेवालों का यह वीर-दर्प और दर्शकों की इस प्रकार की निरीह मूर्ति, ओह, यह मुझे असहनीय मालूम होता है!

पहली दो रात तो मुझे नींद ही नहीं आई। हृदय में

एक व्याकुल आर्तनाद का अनुभव होता रहा। यह गम्भीर आशंका काहे की थी? तीसरी रात को क्लान्त होकर निद्रा का मोह-स्पर्श पहले-पहल अनुभव किया। आवेशमयी निद्रा—आह, वह सब व्यथा को भुला देती है। पहरेदार की आवाज़ से नींद खुल गई। पैर में भारी जूता, हाथ में चाबियों का गुच्छा—ऐसा लगता था, मानों यमदूत हो!

मैंने आँखों को मसलकर चारों ओर देखा? कारागार की मज़बूत काली दीवार! छत के नीचे हवादान में से आसमान का कुछ हिस्सा नज़र आया। सूर्य का प्रकाश उस आसमान पर खिल रहा था। सचमुच मैं इस प्रकाश को अत्यन्त प्यार करता हूँ।

मैंने कहा, "वाह, कैसा सुन्दर दिन है?"

पहरेदार चुप रहा। मेरी बात का उत्तर देना शायद उसने ज़रूरी न समझा। फिर अकस्मात न जाने क्या सोचकर उसने उत्तर दिया, "हाँ, बड़ा सुन्दर दिन है।" पत्थर की भाँति मैं निश्चल, निष्पंद हो गया। चेतना लुप्त हो गई। मैं उसी हवादान की ओर देखता रहा। फिर कहा—"वाह, बड़ा सुन्दर प्रभात है!"

उसने कहा—"हाँ ! लेकिन बाहर तुम्हारा सब इन्त-ज़ार कर रहे हैं।"

उसका यह उत्तर ! मकड़ी के जाल की भांति इस उत्तर ने मुझे फिर पुरानी चिन्ता के जाल में घेर लिया। इसी समय मेरी आँख के सामने खड़ा हो गया—वह निर्मम, हृदयहीन, रक्त का प्यासा विचारक, उसका अप्रसन्न गम्भीर मुख, और लोभी गवाहों का दल, काले गाउन में मण्डित वकीलगण, चित्र की भांति सज्जित पहरेदार तथा चपरासियगन और साथ ही आवारा दर्शकों का समूह !

मेरी सारी देह में आग लग गई। बदन काँपने लगा। पैर भी टल रहा था। पहरेदार मुझे पकड़कर बाहर खींच लाया। बाहर की हवा से बहुत-कुछ शान्ति मिली और दुश्चिन्ता मिट गई। सिर के ऊपर विस्तृत नीला आकाश—ठण्डी धूप का मधुर स्पर्श, चारों ओर पक्षियों का कलरव, दूर पर पेड़ों की छाया—अहा ! यह संसार इतना सुन्दर है, यह आज ही मालूम हुआ।

उसके बाद फिर विचार-गृह की बद्ध वायु। जीवन के बाद मृत्यु,—वह भी शायद ऐसी ही भीषण होगी। मुझे देखते ही चारों ओर कुछ शोर-सा होने लगा। काना-

फूसी, कागज़ों का खसखस, जूतों की चरमराहट, ये सब मिलकर एक अजीब ही तरह की मिश्र-रागिणी की सृष्टि हो गई। मुझे देखने के लिए अबतक सब धीर भाव से प्रतीक्षा कर रहे थे। मेरे आते ही उनको भी कुछ आराम मिला। कैसी निर्लज्ज हृदयहीनता! एक आदमी की फाँसी का हुक्म सुनने के लिए इन पशुओं को कैसा कुतूहल!

चारों ओर शान्त निस्तब्ध! आँधी आने के पहले प्रकृति जिस प्रकार शान्त हो जाती है, ठीक उसी भांति! अभी आँधी आवेगी! एक भयानक आँधी आयगी! मेरी हड्डियों को पीसकर, नस-नस को चबाकर, जीवन को सहस्र खण्ड में विदीर्ण कर तब यह आंधी ठहरेगी। आज मेरे अपराध का दण्ड-विधान होगा।

दण्ड! कौन किसको दण्ड देगा! कौन किसके अपराध का विचार करेगा? मैं चुपचाप खड़ा हुआ इन्तज़ार कर रहा था। हृदय रह-रहकर काँप उठता था। क्या गम्भीर विराट स्पन्दन था! उसका धक्-धक् शब्द शायद बन्दूक के शब्द से भी अधिक भयानक था।

मेरे मन में उस समय कोई भय नहीं था। कमरे की खिड़की खुली हुई थी। मैं आकाश की ओर देख रहा था।

वहाँ असंख्य छोटे-छोटे पक्षी उड़ रहे थे। शान्त और मधुर हवा माता की भाँति ही मेरे ललाट पर अपना शीतल हाथ फेर रही थी। जज की आँखें मानों नींद से भरी हुई थीं। उस ओर नज़र पड़ते ही मैं सोचता था, "यह अभिनय क्यों ?"

बाहर दूकानदार लोग हँस रहे थे। उन्हें मेरा ख़याल ही नहीं। वे अपनी ही हँसी और बातों में मग्न हैं। हँसी और बातों से उन्हें कभी फ़ुर्सत नहीं मिलती। कैसे निर्बोध हैं ये दूकानदार लोग ! मूर्ख हैं।

चारों तरफ़ इतना आनंद ! इतनी शोभा ! इस समय मृत्यु की बात सोचना निष्ठुरता है—पाप है ! यह स्निग्ध वायु, ऐसी दिव्य उज्ज्वल प्रसन्न सूर्य-किरण। इस समय मृत्यु की चिंता—कैसी अशोभनीय बात ! सूर्य-किरण की भाँति आशा की घटा कभी-कभी निराश हृदय में प्रकाश डाल रही थी—अहा ! यदि आज मैं मुक्त हो जाऊँ।

मेरे वकील ने कहा, "उम्मीद !"

कुछ हँस कर मैंने उत्तर दिया—"अच्छी बात है।"

वकील ने कहा, "मैंने सिद्ध कर दिया है कि घटना

अकस्मात हो गई—फाँसी तो हो ही नहीं सकती, हाँ, आजन्म कारावास—खैर, देखें क्या होता है।"

मैंने कहा—"क्या, कारागार में आजन्म के लिए बन्दी? नहीं, उससे तो मौत ही अच्छी है।"

हाँ, मौत भी अच्छी है। मैंने बाहर की ओर देखा! एक पक्षी डाल पर बैठ कर एक फल को ठुकरा रहा था। कितना आनन्दी जीव है वह! मैं यदि वैसा ही एक पक्षी होता! वैसा ही मुक्त और स्वाधीन होता!

जज उस समय अपनी राय पढ़ रहे थे। मेरा ध्यान उस ओर नहीं था। जीवन और मृत्यु की बात तो मैं उस समय भूल ही गया था। सहसा कान में आवाज़ आई—'फाँसी'। सिर में पसीना आ गया। आँखों के सामने काला पर्दा गिर पड़ा। मैं उस कठघरे से टिक कर खड़ा हो गया। शायद जज को कुछ दया आई। उसने पूछा, "तुम्हें कुछ कहना है?"

कहने को तो बहुत कुछ था। परन्तु बात बढ़ाकर फ़ायदा ही क्या था? और ज़बान पर मानों ताले पड़ गये थे। दोनों हाथों से मैंने अपने मुँह को ढक लिया। लोग शोर करते हुए विचार-गृह के बाहर जा रहे थे। उनके पैरों

का शब्द सुनाई दे रहा था। ओफ़, अब उनको कुछ चैन मिली है! काम-काज, विलास-विश्राम सब छोड़ कर जो मेरे लिए इतनी दूर आने का कष्ट उठाते थे, मैंने उनको छुट्टी दे दी! वे खुश होकर चले गये।

बहुत देर बाद मेरे मुँह से बात निकली। मैंने कहा—"हुज़ूर, केवल इतनी दया करें कि फाँसी जल्दी हो जाय, बस और कुछ नहीं।"

सारे संसार पर मुझे क्रोध आ गया। वह सदा की भाँति ही हँसता रहेगा, आनन्द करता रहेगा। मैं उसको खाली कर जाऊँगा, परन्तु वह इसका अभाव अनुभव नहीं करेगा। हाय, ऐसी सुन्दर पृथ्वी, परन्तु ऐसी निर्दय है! किसीके लिए उसके हृदय में स्नेह नहीं, ममता नहीं, मानों निस्पन्द और कठोर एक जड़-पिण्ड है! यही संसार है, और इसी संसार में किसी प्रकार टिक रहने का नाम जीवन है! इससे मृत्यु, हाँ, वह क्या इससे अधिक कठोर है?

पहरेदार मुझे बाहर ले आये। बाहर दर्शकों का दल उस समय भी मुझे देखने के लिए उन्मत्त था। अरे, इन सब हृदयहीन पशुओं के सिर पर बिजली नहीं गिरती? कैसे प्रेत हैं! पिशाच हैं!

बाहर आकर देखा, कैसा परिवर्तन है। जब इधर से होकर विचार-गृह की ओर आया था, उस समय मैं भी और सबों की तरह जीवित था। और अब? अब तो मानों मेरी मृत देह को कोई खींचे ले जा रहा है। अब मानों मैं इस संसार का कोई नहीं हूँ। पक्षियों का गान, सूर्य की किरणें—ये आज मेरे नहीं हैं। नदी का स्निग्ध जल, नीला आसमान और सबों के लिए तो ठीक वैसा ही है, केवल मैं ही इनमें से चला गया हूँ। वे छोटे-छोटे फूल, पेड़ की वह छाया,—हाय, वे मेरे लिए नहीं हैं! इन सबपर आज मेरा कोई अधिकार नहीं है!

काले रंग की गाड़ी मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। मैं जब गाड़ी में चढ़ने लगा तो दूर पर कोई कह रहा था, "उसको फाँसी का हुक्म हो गया।" मैंने उसकी ओर फिर कर देखा। एक व्यर्थ आक्रोश हृदय में धधक उठा।

गाड़ी चली! मैं उसके भीतर के एक छोटे से छेद में से बाहर के संसार को देखता जा रहा था। सड़क पर आदमी चले जा रहे हैं—ख़ासी चहल-पहल मची हुई है। उसमें कुछ भी फ़र्क नहीं आया है। मेरी मृत्यु से इनकी कोई हानि नहीं है, कोई सहानुभूति नहीं है। हाय रे मनुष्य!

३
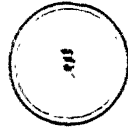
मृत्यु !

किन्तु हानि भी क्या है ? मनुष्य हमेशा तो जीवित नहीं रहता । एक दिन तो मरेगा ही । वह दिन और वह क्षण ही उसको अज्ञात है । बस, केवल इतना ही तो फ़र्क है । फिर क्यों मैं व्यर्थ ही घबरा रहा हूँ ?

आज से लेकर फाँसी के दिन तक कितने ही आदमी संसार छोड़ जायँगे ! मेरी फाँसी देखने के लिए जो लोग दिन गिन रहे हैं, उनमें से भी कितने ही चल बसेंगे । फिर मैं अपने जीवन पर इतनी ममता क्यों कर रहा हूँ ?

प्रकाश और हवा से न्यारा यह जेलखाना, कदर्य अहार, निःसंग जीवन, अपमान-पीड़ित हृदय, असभ्य और निष्ठुर

पहरेदार—हाय, इस जीवन से लाभ ही क्या? संसार में मेरे लिए करुणा की एक बूँद आँसू भी नहीं है। मैं रिक्त हूँ, भिखारी हूँ! मेरी नाव की पतवार टूट गई। इस जीवन से क्या लाभ?

काले रंग की बन्द गाड़ी मुझे जेलख़ाने में ले आई।

पहले जब जेलखाने को देखता था तो यह भारी मकान कुछ ऐसा बुरा मालूम होता था। न जाने कितनी बार उसी जेलखाने के सामनेवाले मैदान पर बैठ कर गीत गायें होंगे। मित्रों से गप्प लड़ाई होंगी। किशोर जीवन के उन्मत्त उल्लास और आनन्द की स्फूर्ति के साथ चन्द्रालोक में बैठकर इसी मैदान में मैं अपने भविष्य-जीवन के मंसूबे बाँधता था। कितनी उद्दाम कल्पनायें करता था! देखने में राज-प्रासाद-सा बृहत् यह मकान, पास ही छोटी सी नदी बह रही है, मानों एक सुन्दर चित्र है। लेकिन आज इसको देखने से भी हृदय घृणा से संकुचित हो उठता है।

मेरा कमरा! उसमें खिड़की नहीं है, केवल लोहे की छड़ें हैं। बड़ा भारी लोहे का दरवाज़ा है, और चारों ओर पत्थर की दीवारें हैं। कहीं भी सौंदर्य का चिन्ह नहीं है। और स्नेह? वह तो यहाँ से कोसों दूर है।

आह, बेचारे सचमुच ही अभागे हैं। जो साधु हैं। उनका स्तोत्र तो सब ही गाते हैं। जो धनी हैं, भाग्यवान हैं, उनके मुख से एक वाणी सुनने के लिए तो सब ही आतुर रहते हैं। परंतु जो इन अभागों को भाई कहकर छाती से लगा सकते हैं, न मालूम वे किस श्रेणी के मनुष्य हैं। उनका स्थान स्वर्ग के कितने ऊपर और कहाँ है? वे सचमुच ही उदार हैं।

और ये जो पहरेवाले हैं—ये भी सहानुभूति दिखाने आते थे। परन्तु उनकी सहानुभूति मानों परिहास था। दुर्दशा के पंजे में पड़ कर ही आज मैं मनुष्य-प्रकृति को समझने लगा हूँ। यह घृणित कैदियों का दल—इनकी सहानुभूति-व्यथित दृष्टि—वह कितना पवित्र है!—ये मुझे घृणा नहीं करते!—मेरे अपराध का परिमाण निर्णय नहीं करते—आलसी दर्शकों की भांति गिद्ध-दृष्टि से मेरी ओर नहीं ताकते।

सोच रहा हूँ कि यदि इन बातों को लिख जाऊँ तो बुरा क्या है? बातें करने के लिए जब कोई साथी नहीं मिलेगा तब ये काग़ज़-कलम ही तो मेरे प्यारे साथी बन सकते हैं! परन्तु लिखूँगा क्या? मेरी इन व्यर्थ चिंताओं के ढेर को काग़ज़ पर सजाने से फ़ायदा ही क्या है? चारों

और दीवारों की वेष्टनी में निर्जीव शृंखलित जीवन के सुख-दुख की माला मैं किसके लिए गूथूँ—मेरी यह माला कौन पहनेगा? मैं तो आज इस संसार का मनुष्य नहीं हूँ।—इस लोक और परलोक के बीचों-बीच एक स्थान पर खड़ा हूँ। मैं किसका आश्रय माँगूँ? मेरा अब कौन है?

फिर भी मैं अपनी व्यथाओं को वेदना की डोर में गूथूँगा। मैं अपने व्यथित भावों को लिख जाऊँगा। देख-कर लोग घृणा करेंगे? करने दो। लोगों ने मुझे घृणा के सिवा और दिया ही क्या है? मेरे दुःख में उनके हृदय में सहानुभूति जगी ही कब थी? फिर मैं उनका भय क्यों करूँ? उनकी घृणा से मेरा अब क्या आता-जाता है?

दिल के अन्दर एक आँधी चल रही है! एक भीषण संग्राम हो रहा है! यह लड़ाई है कठिन और कठोर मौत के साथ!

जिसके जीवन के दिन बिलकुल गिन दिये गये हैं, उसकी अवस्था—ओह! प्रकाश शीघ्र ही बुझा दिया जायगा। जीवन का प्रकाश भी बुझ जायगा। हाँ, शीघ्र ही!

पल-पल में जिस भीषण यन्त्रणा का सामना मैं कर रहा हूँ—तुच्छ फाँसी की रस्सी—उसकी यन्त्रणा क्या

इससे भी अधिक है? वह तो एक विराट मुक्ति का पथ दिखायगी। इस बद्ध वायु और रुद्ध करुणा के ऊपर से विराट संकीर्णता का पत्थर तो एक वही हटा देगी। उसके बाद?—आह, आशा और प्रकाश का अपूर्व राज्य—परन्तु यह सुन्दर संसार—ओह!

अच्छा ये लोग—जिन्होंने क़ानून बनाया है, क्या इन्होंने कभी यह भी सोचा है कि मनुष्य को फाँसी पर लटका देने का अधिकार मनुष्य को किसने दिया? उसमें भी प्राण हैं, चेतना है, बुद्धि है, ज्ञान है! एक पतली सी रस्सी के सहारे पल भर में इन सब को नष्ट कर देना—साथ ही उसकी सब साध, उसकी सब आशा, उसका सारा प्रेम, विराट हृदय, सबको भस्मीभूत कर देना—यह कैसा नृशंस, कैसा अमानुषिक अनुष्ठान है? परन्तु उनकी समझ में ये बातें नहीं। वे इन बातों को नहीं सोचते। उनकी आँखों के सामने नाचती है केवल एक रस्सी और एक गर्दन—बस; और कुछ नहीं। मूर्ख, प्रतिशोध को ही उन्होंने सर्वोच्च समझ रक्खा है।

इसीलिए तो मैं लिख रक्खूँगा! अपनी इस वेदना को लिखाऊँगा! सफ़ेद कागज़ों पर, इस क़लम के सहारे! मन

के भीतर जो द्वन्द्व चल रहा है, कोई उसे नहीं देखेगा, नहीं समझेगा ? तुच्छ शरीर की वेदना ! वह, दम घुट रहा है !

क्या कभी कोई इन कागज़ों को नहीं पढ़ेगा कि क्या-क्या कष्ट सहकर एक आदमी ने प्राण दिया है ? ईश्वर जानता है। शायद इन्हें कोई भी न पढ़े। शायद किसी दिन आँधी की हवा में उड़कर ये कागज़ बिखर जायँगे। सड़कों के किनारे और मोरियों में पड़े रहेंगे या कोई पंसारी इनसे पुड़िया बाँधेगा। स्याही की शेष रेखा भी मेरे ही जीवन की शेष-साँस की भांति नीरव और निर्जन में ही विलुप्त हो जायगी।
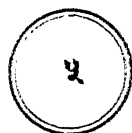
शायद कभी किसीकी दृष्टि इन कागज़ों पर पड़े—तब ऐसा आन्दोलन शुरू होगा कि फाँसी की प्रथा ही उठ जायगी। कितने ही निर्दोषों को, कितने ही अभागों को दुर्दशा के हाथ से छुट्टी मिल जायगी ! परन्तु उससे मेरा क्या लाभ होगा ? मेरा जीवन तो उसके बहुत पहले ही फाँसी की वेदी पर चढ़ा दिया जायगा !

प्राण निकल जायगा ! मृत्यु हो जायगी ! सूर्य का यह प्रकाश, वसंत की यह स्निग्ध हवा, फल-फूलों से भरा हुआ यह विचित्र संसार, रंगीला आसमान, सारा चराचर, हाय, मैं इन सबके बाहर चला जाऊँगा !

नहीं, मुझे अपनी रक्षा करनी ही होगी ! अपने जीवन को बचाना होगा !

क्या किसी प्रकार भी इस मृत्यु की गति को मैं रोक नहीं सकता? आह, इच्छा होती है कि कारागृह की इस कठिन दीवार पर अपना सिर फोड़ लूँ! निराशा और क्षोभ से फाँसी देनेवाले हाहाकार कर उठेंगे और तब मुझे बड़ा आनन्द आयगा!

अच्छा एक बार अपनी अवस्था पर शुरू से विचार कर लूँ। आज तीन दिन हुए मेरा विचार ख़तम हो गया है। वकील कहता है, अपील करनी चाहिए! अन्तिम चेष्टा!

आठ दिन तक दरख़्वास्त इस कमरे से उस कमरे में घूमती रहेगी। पन्द्रह दिन बाद कोर्ट में पहुँचेगी; उसके बाद नम्बर डलेगा, रजिस्ट्री होगी। फिर उस पर विचार होगा। अपील करने की इजाज़त भी मिले या नहीं, सन्देह है।

फिर पन्द्रह दिन तक इन्तज़ार करना होगा। अधीर भाव से, प्रतीक्षा करनी होगी। फिर वही विचार का अभिनय! सरकारी वकील समझावेगा कि इस क़ैदी का अपराध यह है और वह है; अपील करना इसकी धृष्टता है; अपराध साबित हो गया है।

इस तरह छः हफ़्ते बीत जायँगे।

सोच रहा हूँ, एक 'विल' (वसीयतनामा) लिखूँ! सोच

तो रहा हूँ, लेकिन व्यर्थ है। मुक़दमे के ख़र्च में मेरा सारा धन तबाह हो गया। जो कुछ रह भी गया है उसका वसीयतनामा लिखाने से शायद कोर्ट और भी कुछ दण्ड ले लेगा!

संसार में मेरी एक तो बूढ़ी माता है, किशोरी स्त्री है, और एक छोटी कन्या है। तीन वर्ष की छोटी सी लड़की है वह। उसके लाल चपल ओठों पर हँसी तो हमेशा लगी ही रहती है। उज्ज्वल और नीली आँखें, घुँघराले केशों के गुच्छे, दो-चार मुक्त केश उसके मुख और आँखों पर उड़ा करते हैं। मानों फूलों पर लताओं का झालर झूलता हो। मैंने उसको छः महीने हो गये नहीं देखा! ओह, छः महीने हो गये!

मेरी मृत्यु से संसार में तीन नारी अनाथ हो जायँगी? पुत्रहीन, पतिहीन, पितृहीन—तीन अभागिनी! क़ानून के एक इशारे से तीनों का आश्रय टूट जायगा!

मुझको जो दण्ड मिल रहा है, यदि यह ठीक भी हो तो भी इन असहायाओं ने तो कोई अपराध नहीं किया। इनपर यह आघात क्यों? सरकार इसका क्या जवाब दे सकती है?

लोगों की घृणा इनके जीवन की जो क्षति करेगी, उसके लिए तो सरकार ने कोई व्यवस्था नहीं की। फिर भी इसी-

का नाम विचार है। यही विचार की सुव्यवस्था है! मुझे हँसी आती है।

बूढ़ी माता के लिए मैं कातर नहीं हूँ। उनकी जीर्णदेह को विदीर्ण करने के लिए यह धक्का काफ़ी है।

स्त्री के लिए भी चिन्ता नहीं है। वह तो वैसे ही बिस्तर पर पड़ी हुई है। चिर-रुग्ण है; रोग से उसका जीवन-दीप बुझने ही को है।—इस संवाद से उसके जीवन की अन्तिम रश्मि संसार से विलीन हो जायगी। हाँ, यदि वह पागल न हो जाय।

सुनता हूँ पागलों का जीवन दीर्घ होता है। होने दो दीर्घ! फिर भी मृत्यु ही की भांति उसमें विराम है, शान्ति है।

परन्तु मेरी कन्या—वह शान्त शिशु, आदर की कन्या मेरी—हँसी, खेल और गीतों में जो सब भूली हुई है! आह, अभागिनी नहीं जानती कि उसके सिर पर भी कोई आफ़त लटक रही है। वज्र की शिखा की भांति उसका जीवन भी पिस जायगा, दलित हो जायगा! ओह, यही चिंता मेरी नस-नस को जला रही है।
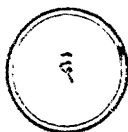
अभी रात बाक़ी है! आँखों में नींद नहीं! अंधकार-पूर्ण कारागार! एक शब्द भी कहीं सुनाई नहीं देता! अब समय कैसे बिताऊँ! समय बिताने का साधन यहाँ कहाँ से आय?

कमरे के एक कोने में लैम्प जल रहा था! उसी को लेकर दीवार के चारों तरफ़ देखने लगा। कहीं कुछ ज़रा-सा छेद नहीं है? बाहर की ठंडी हवा भीतर आने का कोई छोटा-सा रास्ता? नहीं।

दीवार में कितनी ही तरह की मूर्तियाँ अंकित हैं। कितनी ही भाषाओं में, कितनी ही बातें लिखी हुई हैं, कहीं खड़िया से तो कहीं कोयले से। हाय, मेरे ही जैसे अभागे मन की व्यथा को इस पत्थर की दीवार पर लिख गये हैं! उनके मर्म

का सारा बंधन टूट गया है ! फिर भी इस पत्थर की दीवार ने सहानुभूति का एक शब्द भी उनसे नहीं कहा। एक क्षीण प्रतिध्वनि भी नहीं की ! मूक, नीरव पाषाण इसी प्रकार निर्विकार खड़ा रहा ! उनके व्याकुल कण्ठ का आर्तनाद पत्थर के शरीर पर लगकर चूर्ण हो गया !

मैं उनकी व्यथा की बातें दीवार पर देखने लगा। एक साधन मिल गया। उनकी वेदना की माला को मैं ही आज आँसू भर कर पहन लूँ ! मृत्यु की बात फिर भी थोड़ी देर को भूल जाऊँगा !

ठीक मेरी शय्या के पास दीवार पर दो हृदयों को एक तीर से गूँथा है। यह एक चित्र है, शायद चित्रकार ने अपने हृदय के शोणित से ही उसपर लिख रक्खा था, "कलेजे की मुहब्बत !" हाय, बेचारे ने यहाँ बैठकर दिन-रात केवल मुहब्बत की बात ही सोची होगी। पास ही कोयले से किसीने लिखा है, "सम्राट् की जय हो !" कितनी आशा, आकांक्षा और आश्वासन इन अक्षरों में भरा है !

एक तरफ़ किसी ने लिखा है, "मैं माथिया को प्यार करता हूँ !" और एक ओर केवल "ए" अक्षर और केवल सफ़ेद खड़िया की एक रेखा ! अंधकार में भी चाँदी के अक्षर

की भाँति ही वह चमक रहा है !—"ए" शायद उसकी प्रियतमा हो ; शायद उसका नाम "एमा" या "एडिथ" था ! हाय, इस एक अक्षर में एक व्यथा-कातर जीवन की कितनी बड़ी लम्बी साँस मिली हुई है !

मैं बैठकर सोचने लगा । मेरे इस निःसंग और निर्जन मुहूर्त में पत्थर की दीवार मानों करुणा से जाग उठी। उसने अपनी पत्थर की छाती में इतनी मर्म-व्यथा, इतनी गोपन वेदना छिपा रक्खी थी ! आज कहाँ है वह अभागों का दल! कहाँ है उनकी साथिया, एमा, एडिथ ! किस गुलशन की आड़ में, किस खिड़की के पास बैठकर वे आसमान की ओर देख रही हैं ! उनकी ठंडी साँस, उनकी विरह-व्यथा, उनका प्रिय-वियोग क्या समाप्त हो गया ? कौन कहेगा !

लेम्प उठाकर मैं देखने लगा ! दीवार के एक कोने पर, यह क्या ! यह तो फाँसी का चित्र है ! किसने यह चित्र बनाया ! किस मूर्ख ने इस प्रकार मृत्यु का आवाहन किया ! यह पृथ्वी, यह जीवन, क्या उसके लिए सचमुच ही असार हो गया था ? दो लकड़ी सीधी-सीधी खड़ी हैं । ऊपर दोनों के सिर से एक और लकड़ी बँधी है । बीच में रस्सी झूल रही है—मैं ध्यान से उसे देखने लगा । सिर में चक्कर-सा आने लगा । लेम्प

हाथ से गिर पड़ा। कमरा अँधेरा हो गया। ओह, कैसा भयानक और तीव्र अंधकार था! अवसन्न होकर मैं ज़मीन पर बैठ गया!

फिर टटोल कर मैं अपनी शय्या पर आकर लेट गया। मन अस्थिर हो रहा था—इस पत्थर की दीवार पर लिखे हुए प्रत्येक चित्र और प्रत्येक शब्द को देखने की एक व्याकुल प्यास जग रही थी।

अंधकार में दीवार टटोलने लगा। मकड़ी के जाल में हाथ लिपट गया। जाल से हाथ को मुक्त कर फिर बिछौने पर बैठ गया। नींद आने लगी। मैं सो गया। जब आँखें खुलीं तो कमरे में कुछ अस्पष्ट प्रकाश आ रहा था। फिर खड़ा होकर दीवार को देखने लगा। दीवार पर एक जगह चार नाम लिखे हुए थे,—दाँतों १८१९; पूलें १८१८; जिन मार्टिन १८२१; कास्तेगँ १८२३। पढ़ने के साथ ही एक भीषण स्मृति मन में जाग उठी।

दाँतों ने भाई की हत्या की थी। पिशाच पूलें ने अपनी स्त्री की हत्या की थी। जिन मार्टिन ने बन्दूक की गोली से अपने पिता का सिर उड़ा दिया था। और कास्तेगँ—डाक्टर कास्तेगँ ने अपने मित्र को ज़हर दे दिया था!

मैं काँप उठा। उनकी आखिरी साँस अभी तक मानों इस कमरे की हवा के साथ मिल रही है इसी शय्या पर वे अपने खूनी जिगर की आखरी बातें, आखरी चिंतायें उँडेल गये हैं। इसी कमरे में वे भी चलते-फिरते थे। आज भी उनकी साँस से यह कमरा गरम है।

उसके बाद मैं भी उनके पीछे यहाँ आया हूँ ! वे मानों चारों ओर से हाथ का इशारा कर मुझे बुला रहे हैं !—वह उनके गले की आवाज़ भी तो सुनाई दे रही है न ? मैंने आँखें बन्द कर लीं। उनकी मूर्ति मानों और भी स्पष्ट हो उठी !

यह क्या सत्य है, अथवा स्वप्न है, या मति भ्रम ?—पैर में कुछ पानी का स्पर्श मालूम हो रहा है !—यह क्या ?—मकड़ी—!—एक बड़ी मकड़ी को मैंने पैर से दबा कर मार डाला है !—इसीका जाल मेरे हाथ से फट गया था !—मुझे चेतना आई—अबतक मानों मूर्छित था ! छाया-मूर्ति मेरे चारों ओर घूम रही है !

नहीं-नहीं, मन को स्वस्थ और सबल करना होगा ! पल-पल पर मृत्यु की यंत्रणा ! इसके कवल से उद्धार पाना ही होगा ! दाँतों और फूल के दल कब्र के नीचे सो रहे हैं। वे यहाँ नहीं आसकते।—नहीं, कभी नहीं आ सकते ! मैं क्यों

व्यर्थ ही उनसे डरा जा रहा हूँ ? इस कारागृह से बाहर भागना तो फिर भी संभव है, परन्तु क़ब्र के नीचे से बाहर निकलना बिलकुल असंभव है। तो फिर क्यों व्यर्थ ही मैं मरा जा रहा हूँ !
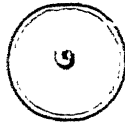
दिन का उज्ज्वल प्रकाश ! चारों ओर एक कोलाहल की ध्वनि ! बड़े-बड़े दरवाज़ों के खुलने और बंद होने का शब्द, चाबियों की खनखनाहट ! मानों यह कारागृह का उल्लास! संगीत हो ! सभी आनन्द में मग्न हैं, सजीव है ! फिर मैं क्यों निरानन्द और उदास हूँ ?

दरवाज़े के पास से एक पहरेदार जा रहा था। उसको बुलाकर मैंने पूछा, "इतना शोर क्यों हो रहा है ? इतना आनन्द क्यों मनाया जा रहा है ?"

उसने उत्तर दिया—"नये क़ैदियों का एक दल आया है, उनके पैरों में बेड़ी पड़ेगी। तुम देखोगे नहीं ?"

संन्यासी की भाँति यह वैचित्र्यहीन, अप्रसन्न, निःसंग

जीवन से मैं उकता गया था। देखने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सका।

बहुत सावधानी के साथ पहरेदार मुझे एक कमरे में ले चला। बैठने के लिए वहाँ एक कुर्सी भी नहीं थी। हाँ, एक बड़ी खिड़की ज़रूर थी। खुली हुई खिड़की। गरादों के भीतर से आज कई दिन बाद आसमान का एक बड़ा हिस्सा नज़र आया। अहा, आसमान कैसा सुन्दर है?

पहरेदार ने कहा—"यहाँ से मज़े में देखो; राजा की भांति आराम से देख पाओगे। कोई पास आकर भीड़ नहीं करेगा।"

कहकर दरवाज़े को बन्द करता हुआ वह बाहर चला गया। ताले में चाबी लगाने का शब्द भी कान में आया। खिड़की से कारागार का बड़ा आँगन साफ़ दिखाई दे रहा था। आँगन के चारों ओर ऊँची दीवार थी। एक लम्बा दालान भी था, जिसमें असंख्य सिर ही सिर नज़र आ रहे थे। सभी तमाशा देखने खड़े थे। आँख और मुख पर एक आग्रह का चिन्ह था—कुतूहल की एक विराट रेखा थी। नरक के प्रेत मानों आज मतवाले होकर नाच रहे हैं! सब की आँखें आँगन की ओर थीं।

बारह बजे। आँगन का फाटक खुला। असंख्य नई मूर्तियाँ भीतर आईं। साथ ही एक बुरा कोलाहल होने लगा। मानों पल भर में एक नई जान कारागार में भर गई। अट्टहास और चीत्कार से सारा स्थान गूँजने लगा।

क़ैदियों की नत-दृष्टि और पहरेवालों का वीर-दर्प—यह सृष्टि ही अजीब थी !

क़ैदियों का नाम पुकारा जाने लगा। उनका अपराध क्या है, दण्ड का परिमाण क्या है, पूछा जाने लगा। जिनके दण्ड का परिमाण अधिक है, उनके नाम के साथ जय-ध्वनि होने लगी। दर्शकों के हृदय में कुछ और ही आनन्द था। मानों क़ैदियों का एक दल एक विजयी सेना है, जो अभी युद्ध जय करके लौट रही है। इसीलिए तो यह आनन्द का आयोजन है और इसी कारण तो यह ताण्डव-नृत्य हो रहा है। दो-एक दर्शक तो आनन्द के मारे गुलाटें तक खाने लगे।

उसके बाद क़ैदियों के दल में आपस की जान-पहचान है या नहीं, इसकी तलाश होने लगी। जिनमें जान-पहचान है, उनको अलग कमरे में रखना चाहिए—कहीं उनको कुछ शांति न मिल जाय; दण्ड की कठोरता कहीं कम न हो जाय !

चारों ओर का विचित्र कोलाहल एक अखण्ड रागिनी की झंकार की सृष्टि कर रहा था। मुझे ऐसा मालूम हो रहा था कि यह किसी माया-लोक की संगीत-ध्वनि है। परंतु अत्यंत ही अर्थहीन, लक्ष्यहीन, उद्देश्यहीन रागिनी थी वह। धीमी हवा मेरे मस्तक को स्पर्श कर रही थी। एक छोटी-सी आशा की किरण भी मेरे मन में न जाने क्यों जगने लगी। वह मीठी धूप, मुक्त-हवा, उदार आकाश—यही तो जीवन है!—इन सबसे दूर रहना—ओह, वह मृत्यु है?

अकस्मात हवा की भांति धूप हट गई। किसी ने मानों एक काला परदा उसपर डाल दिया। हलके बादल ने आकर पृथ्वी और धूप के बीच एक व्यवधान की सृष्टि की। स्वप्न के कुहक-जाल की भांति ही एक छाया ने आकर धूप की गति रोक दी। सहसा पानी बरसने लगा। आँगन से दर्शकों का दल हट गया। केवल घोंसले के खोये हुए पक्षियों की भाँति ही क़ैदियों का दल असहाय-भाव से भीगने लगा। दो-एक व्यक्ति काँप रहे थे। परंतु इससे क्या? कारण, वे क़ैदी हैं। आराम के साथ उनका कोई रिश्ता नहीं है।

जब पानी बन्द हो गया तब सब फिर सांकलों में जकड़

दिये गये। पैरों में बेड़ियाँ डाली गईं। कोई रोने लगा और कोई ज़मीन पर लोट गया। एक आर्तनाद का स्वर! परन्तु मारे कोड़ों के सब सीधे कर दिये गये। ओह, कैसे पिशाच हैं ये? निश्चल पत्थर की भाँति कठोर होकर मैं यह सब देखने लगा।

बादल हट गया। सूर्य का प्रकाश फिर निकल कर मुसकराने लगा। मानों काले पर्दे को दोनों हाथों से हटाकर वह बाहर निकल आया हो, यह तमाशा देखने के लिए। भीतर से क़ैदियों का दल फिर निकल आया। कोई सीटी बजा रहा था और कोई गा रहा था।

अब भोजन की पारी है। भोजन की सामग्री आई। बड़ी-बड़ी बालटियाँ, उनमें फीका-सा कोरे जल का पदार्थ, स्वाद नहीं, गंध नहीं! भुक्त-भोगी को ही उसका ज़ायका मालूम है।

फिर भी वे—बेचारे भूखे—तृप्ति के साथ उसे खाने के लिए व्यस्त हो उठे। उसीमें उनको कम आनन्द नहीं था।

आग्रह के साथ मैं सब देख रहा था। अपना ख़याल मैं भूल गया। चित्त में करुणा भर गई। आँखों में आँसू आ गये।

सहसा एक आवाज़ आई, "उठो; चलो!" क़ैदियों में

शोर-गुल मच गया। वे सब खड़े हो गये। कतार बँध गई। सब चलने लगे।

मेरी खिड़की के पास से ही वे जा रहे थे। मुझे देख-कर वे एक बार खड़े हो गये। मेरी छाती धड़क उठी। क्या मैं अजायब-घर का कोई जानवर हूँ, जो इस प्रकार वे मेरी ओर ताक रहे हैं?

एक ने कहा,—"फाँसी का आसामी देख लो। इसको फाँसी दी जायगी।" चारों ओर एक हँसी की धूम मच गई। असभ्य पशु!

मेरे सिर में चक्कर-सा आने लगा। मानों मैं शून्य में लटक रहा हूँ!

इन्होंने कैसे जान लिया कि मुझे फाँसी का हुक्म मिल गया है?

"अच्छा, आखरी सलाम दोस्त!" निर्लज्ज की तरह वे चिल्ला उठे। एक ने कहा, "हमसे तो अच्छे ही हो, शीघ्र छुट्टी मिल जायगी। मुझे तो अभी चौदह वर्ष यहाँ भुगतना है।"

मेरी चेतना लुप्त-सी हो गई थी। हिलने तक की शक्ति

नहीं थी। आँखों के सामने नदी के स्रोत की भांति क़ैदियों का दल चला गया।

सहसा होश आया। मैं सिहर उठा। सोचा, इस खिड़की के बाहर कितना प्रकाश, कितना आनन्द है—और भीतर वायु, प्रकाश और प्राण सब रुद्ध हैं। यदि ये सीख़चे न रहते—सीख़चों को पकड़ कर जी-जान से एकबार हिलाने की चेष्टा की! वे ज़रा भी न हिले। मुझे चोट आ गई। मैं क्रोध से गरज उठा। मेरा अन्तर विदीर्ण हो रहा था।

दूर से शोर-गुल की एक अस्पष्ट ध्वनि कान में आ रही थी। मैं वहाँ अवसन्न-भाव से बैठ गया। दूर का कोलाहल धीरे-धीरे क्षीण हो गया। मेरे जीवन पर मानों कोई एक काला पर्दा धीरे-धीरे डाल रहा था। मैं मूर्छित हो कर गिर पड़ा।
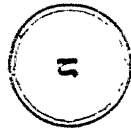
आँखें जब खोलीं उस समय रात हो गई थी। मैं निवाड़ की खाट पर सो रहा था। बत्ती जल रही थी। कमरा बहुत बड़ा था और खाटों की क़तारें लगी हुई थीं। मैं समझ गया कि मैं अस्पताल में हूँ। चारों ओर बिलकुल निस्तब्ध शान्ति !

कुछ देर तक तो मुझे कुछ याद ही नहीं आया। जाग तो रहा था, परन्तु चेतना नहीं थी।

पहले जेलख़ाने के इन अस्पतालों से मैं कितनी घृणा करता था, परन्तु आज मैं वह मनुष्य नहीं रहा। एक मैली-सी चादर ! रोगों की तीव्र दुर्गन्ध ! चारों ओर परिपूर्ण अशान्ति ! एक मूर्तिमान विभीषिका ! मैंने आँखें

बन्द करलीं — निद्रा के शीतल स्पर्श से सब यंत्रणाओं को भूल गया ।

अचानक नींद खुल गई । देखा, दिन निकल आया है । बाहर से शोर-गुल की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। मेरी खाट बिलकुल खिड़की के पास लगी हुई थी । खिड़की से मैंने बाहर की ओर देखा, क़ैदी लोग काम पर जाने की तैयारी कर रहे हैं । उनकी बेड़ियों का झनाझन शब्द अच्छी तरह सुनाई दे रहा है । सुना, सवेरे ही एक व्यक्ति को फाँसी लग चुकी है—उत्सुक दर्शकों का दल, वही देख कर, हल्ला करता हुआ लौट रहा था । निर्लज्जों को हल्ला करने में शर्म नहीं मालूम होती । एक आदमी की जान ही चली गई और ये आनन्द से चिल्ला रहे हैं ! इनके सिर पर गिरने के लिए आकाश में क्या वज्र का अभाव हो गया है ?

मैं शीघ्र ही स्वस्थ हो गया। मेरा भाग्य ही ऐसा बुरा है। मुझे अस्पताल छोड़ना पड़ा। फिर कारागृह का वह बन्द कमरा, मेरी ही लंबी साँस की गरम हवा से भरा हुआ, चारों ओर निराशा और विषाद का निरानंद और विमर्ष-भाव—इसी कमरे में जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिननी पड़ेंगी।

कोई भी बीमारी नहीं! यह तरुण, स्वस्थ और सबल देह—रोग के ग्रास से वह जीर्ण क्यों होने लगा? नसों के भीतर से गरम ख़ून तेज़ी से चल रहा है; ऐसी बुद्धि, ऐसा स्वास्थ्य—मन फिर क्यों पल-पल में विचलित हो रहा है? क्यों वह जला जा रहा है?

अस्पताल से लौटने के बाद केवल एक बात कभी-कभी सोचने लगता हूँ । वहाँ से भाग जाने का अच्छा मौक़ा था, वह मौक़ा मैंने मूर्ख की भाँति क्यों छोड़ दिया ? क्या अच्छा और आसान मौक़ा था वह ! रात के निस्तब्ध अन्धकार में चुपचाप निकल सकने पर—क्या ही मुक्त-स्वाधीनताके उदार राज्य में मैं पहुँच जाता ? सिर के भीतर नसें धिक-धिक करने लगीं । आँखों के आगे चारों ओर हरे गोले तैरने लगे ।

यदि भाग जाता ? अहा ! उसमें इनका क्या नुक़सान था ? अपील से यदि छूट जाऊँ ? परन्तु उसकी संभावना कहाँ है ? गवाहों ने सौगंध खाई है—विचार काफ़ी तौर से हो गया है । अब अपील से क्या फल होगा ? कुछ नहीं । हाय, सब व्यर्थ है, फाँसी की रस्सी ही मेरे भाग्य में बदी है । अपील की क्षीण आशा ? वह अत्यन्त कमज़ोर है ।

यदि आज क्षमा मिल जाय ! क्षमा ? परन्तु क्यों मिलेगी ? ये असंख्य अभागे—बोझा ढोकर, बेड़ी खींचकर, जेल में सड़ रहे हैं—सड़ा हुआ भोजन खाकर पेट की ज्वाला को बुझा रहे हैं । इनका परिवार, कुटुम्ब, मित्र कहाँ है ? इनके घरकी दशा क्या है ? ये इस यंत्रणा को समान

भाव से भोगते रहेंगे और मुझे क्षमा मिल जायगी, मैं आनंद के साथ घर लौट जाऊँगा ! क्यों, मुझे किस कारण वे क्षमा करेंगे ? देश के लोग इस अन्यायपूर्ण क्षमा को देखकर क्या कहेंगे ! नहीं, क्षमा नहीं; फाँसी ही मेरी मुक्ति का एकमात्र उपाय है !

हाँ, यदि भाग जाता ! हरे-हरे खेतों पर से, छोटी-छोटी पहाड़ियों पर से नदी-वन अतिक्रम कर किसी अनजान देश की ओर चलता रहता ! किसी की ओर नहीं देखता, किसी के दरवाज़े पर नहीं ठहरता ! कहीं भी भीख नहीं माँगता ! पेड़ के फलों से क्षुधा की निवृत्ति, नदी के जल से तृष्णा का निवारण, पक्षियों के गीत में विश्राम, तरु-तल पर निद्रा ! लोकालय में ? नहीं—यदि कोई संदेह करे ? यदि पकड़े ? मैं भागता थोड़े ही !—उससे तो उनका शक बढ़ जाता ! धीरे-धीरे निश्चिंत-भाव से कितने ही शहर क़स्बे-गाँव पार कर जाता। एक गुप्त-वेश कहीं से जुटा लेता। मेरे गाँव के पास वह जो झाड़ी है, वहीं जाकर पहले विश्राम करता। उस झाड़ी में मैंने कितनी ही रातें जगकर बिताई हैं, कितने ही दिन वहाँ खेलकर काटे हैं ! बचपन में हमजोलियों के साथ वहाँ वह आँख-मिचौनी का खेल ! हँसी, दिल्लगी, मज़ाक़ !

अहा, कैसे सुंदर दिन थे वे ! उस अतीत का एक पल भी कहीं आज मुझे मिल जाय !

हाँ, फिर जब अँधेरा हो जाता तब सड़क पर निकलता, भिन्सेन जाता ! नहीं भिन्सेन कैसे जा सकता था ? रास्ते में बहुत बड़ी नदी है, पार होना कठिन है । तो आपजिन जाता ! नहीं, शायद जर्मनी जाना ही ठीक होता—वहाँ से हेभर, हेभर से इंग्लैण्ड ! परंतु यदि उस समय पुलिस पकड़ लेती, पासपोर्ट माँगती तो ? बड़ी आफ़त होती ।

हाय, अभागा हूँ । मैं यह क्या सोच रहा हूँ ? स्वप्न-भ्रांत जीव, तीन फुट मोटी इस दीवार को लाँघना सम्भव कहाँ ? हाय-हाय, कोई उपाय नहीं है—नहीं है ! मृत्यु ही अब मेरी साथिन बनेगी !

उस बचपन की याद आ रही है, जब मैं बालक था । इसी जेल में फाँसी देखने के लिए आता था । ओफ़, कितनी भीड़ जमती थी ! और आज ?

लैम्प बुझने वाला था। अभी सवेरा हो जायगा! गिर्जे की बड़ी घड़ी में टन्-टन् कर छः बज गये।

पहरेदार ने आकर टोपी खोलकर सलाम किया। नम्र-कण्ठ से पूछा, 'कुछ खाने की इच्छा है या नहीं?' आश्चर्य, ऐसा विनय-नम्र व्यवहार! मेरा सारा अंग काँप उठा! तो क्या आज ही?

हाँ, आज! काराध्यक्ष स्वयं आये थे! मुझे क्या चाहिए, इसीकी जाँच करने। और भी उन्होंने पूछा, मेरे प्रति कोई बुरा व्यवहार तो नहीं करता? मेरे सम्मान की हानि तो कोई नहीं करता है न? मेरा स्वास्थ्य कैसा है? रात को नींद तो अच्छी आती होगी? हर-एक बात के साथ महाशय कह कर वह सम्बोधन कर रहे थे! कोई भी सन्देह न रहा। आज,

तब आज ही, वह स्मरणीय दिन है ! जिस दिन की बात एक पल के लिए भी नहीं भूला था !

काराध्यक्ष अथवा उनके कर्मचारीगण, कोई त्रुटि कैसे कर सकता है, मेरे प्रति खराब व्यवहार कैसे कर सकता है, हँसी की बात है ! वे केवल कर्तव्य की पूर्त्ति कर रहे हैं । सतर्क भाव से मेरी निगरानी कर रहे हैं । मेरे प्रति किसी ने कोई बुरा आचरण नहीं किया । मुझे इसीसे संतोष करना चाहिए ।

और यह काराध्यक्ष—यह भला आदमी कैसी मीठी-मीठी बातें करता है, मधुर दृष्टि से देखता हैं,—हाः—हाः—हाः, दीर्घ-बलिष्ठ बाहु ! कारागृह का यही एक प्रतिबिम्ब है ! मालूम होता है यही जीवित पत्थर का एक जेलखाना है ! यहाँ की सब वस्तुयें जेलखाने का ही रूपांतर हैं ! पहरेदार, लोहे की गरादें, पत्थर की दीवार—सब ! चाबी और ताले तक जीवित मालूम होते हैं—सब मिलकर मेरा पहरा दे रहे हैं ! और यह कारागृह—निष्ठुर कारागार, आधा पत्थर और आधा मानव-देह विशिष्ट—मुझको मानों इसने जकड़कर बाँध रक्खा है ! लोहे का हृदय लेकर मुझसे आलिंगन करने आ रहा है । दरिद्र अभागा हूँ मैं ! मुझसे यह दिल्लगी क्यों करते हैं ?

चित्त शांत है। कुछ भी फ़िकर नहीं है। द्विधा भी नहीं है। जेल के अध्यक्ष आकर देख गये हैं। उनसे मिलने के बाद मैं अच्छा ही हूँ। पहले मन में जो थोड़ी-बहुत आशा थी भी, वह मैंने अब छोड़ दी है—यह केवल उन्हींके कहने से।

साढ़े छः या पौने सात बजे होंगे। अकस्मात मेरे कमरे का दरवाज़ा खुल गया। बाल सफ़ेद हो गये हैं, ऐसे एक आदमी ने मेरे कमरे में प्रवेश किया। आते ही उन्होंने अपना भारी काला कोट खोल डाला और बैठ गये। कपड़ों से मैं समझा कि यह महाशय आचार्य हैं।

मेरे सामने ही वह बैठे थे; सिर हिलाकर उन्होंने आकाश

की ओर देखा। इस दृष्टि का अर्थ मैं समझ गया। उन्होंने कहा,—"क्या तुम प्रस्तुत हो गये हो बच्चे ?"

शांत स्वर मे मैंने उत्तर दिया,—"नहीं, प्रस्तुत तो ठीक नहीं हूँ,—परंतु, हाँ, अभी उठने को तैयार हूँ।"

मेरी दृष्टि क्षीण हो रही थी। ललाट पर पसीना आ रहा था। प्रस्तुत—एकदम प्रस्तुत,—परन्तु किसलिए ? मेरी छाती काँप उठी! प्राणों के भीतर एक विकट शब्द ध्वनित होने लगा!

आचार्य बहुत-कुछ कह रहे थे—उनके ओठ हिल रहे थे, हाथ-पैर और गर्दन भी साथ ही साथ हिल रहे थे। वे क्या कह रहे थे, यह मुझे नहीं मालूम; कारण, कोई भी बात मेरे कान के भीतर तक नहीं पहुँचती थी।

फिर दरवाज़ा खुला। अब जेल के अध्यक्ष स्वयं उपस्थित हुए। शरीर पर एक लंबा काला कोट, हाथ में काग़ज़ों का पुलिन्दा—सूरत पर एक दुःख का भाव लाने की चेष्टा वह कर रहे थे।

काराध्यक्ष ने कहा,—"अदालत से ख़बर आई है।" एक बिजली मेरे सारे शरीर में दौड़ गई।

मैंने पूछा,—"क्या ? अदालत मेरा सिर अभी माँगती

है ? वह तो मेरे लिए गौरव की बात है । मेरे इस सिर पर सरकारी वकील को कुछ विशेष लोभ है—यह मैं खूब जानता हूँ । हाँ, मैं बिलकुल प्रस्तुत हूँ !" वह पुलिन्दा खोल कर कागज़ों को पढ़ने लगे,—वही अदालत की जटिल भाषा—विकट और दीर्घ शब्दों का झंकार—जिनका अर्थ कहीं मुश्किल से कोई समझ सकता है । आध घण्टे तक कागज़ों को खस-खस करने के बाद उसका अर्थ समझ में यह आया—मेरी अपील मंज़ूर नहीं हुई है । अच्छी बात है !

कागज़ों पर से आँखों को न उठा कर ही उन्होंने कहा—"प्लेदी ग्रीव्ह में फाँसी होगी । साढ़े सात बजे हम लोग को सियारजारी-जेल की ओर रवाना होंगे । कृपया आप भी हमारे साथ चलें।"

कुछ देर तक मैं चुप रहा, किसीकी बात का उत्तर नहीं दिया । जेल के अध्यक्ष और आचार्य में खूब बातें हो रही थीं । देश की मामूली चर्चा हो रही थी, वे उसी चर्चा में तन्मय थे ।

ठीक इसी समय दरवाज़ा खोल कर चार हथियारबन्द पहरेदार कमरे में घुस आये । देखने में वे यमदूत-से मालूम होते थे । सलाम करके उन्होंने कहा, "समय हो गया है ।"

मैंने कहा—"मैं तैयार हूँ;—चलो"। उन्होंने कहा—"आध घण्टे के भीतर ही रवाना होना पड़ेगा।" कहकर वे कमरे से बाहर चले गये! एक बार अंतिम चेष्टा! भगवान, सचमुच ही क्या कोई आशा नहीं है?

भाग जाऊँ? हाँ, जैसे भी हो भागना पड़ेगा! दरवाज़ा, खिड़की, छत, सबको पार कर जैसे भी हो भागन पड़ेगा! यदि देह के मांस को भी रख जाना पड़े तो वह भी स्वीकार है। केवल हड्डियों को लेकर ही भागूँगा!

यदि कहीं से कोई यंत्र या अस्त्र मिल जाय! राक्षस की भाँति बल से मैं सबका उच्छेद कर जैसे भी हो—परंतु मेरे हाथ में एक कील भी तो नहीं है—अभागा हूँ—आशा नहीं है!

वह कुछ रसिक मालूम पड़ा। मैंने पूछा—"इसका अर्थ ?"

बड़ी ज़ोर से क़हक़हा मारकर वह हँस पड़ा। मैं डर गया। वह कहने लगा—"क्या इसका अर्थ भी नहीं समझे ? मामूली बात है ! छः हफ्ते बाद मुझे इस दुनिया के पार भेज दिया जायगा। इसीलिए अभी से मेरे ऊपर चालान की मुहर लग चुकी है। मतलब यह है कि छः घंटे बाद तुम्हारी जो दशा होगी, छः हफ्ते बाद मेरी भी वही दशा होगी। अब तो समझ गये न—मैं तुम्हारा कितना बड़ा मित्र हूँ।"

मेरी नसें सिकुड़ने लगीं।

वह कहता गया—"चुपचाप सोचने से कोई फल नहीं होगा मित्र ! इससे सुनो, मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाऊँ ? वक्त भी कट जायगा—और, कहानी है भी मज़ेदार।"

उसने कहना शुरू किया—"चोरी-डकैती तो हमारा पीढ़ी-दरपीढ़ी से पेशा हो रहा है। परन्तु फाँसी केवल मैं ही चढ़ाया जा रहा हूँ। तक़दीर की बात है !

"छः वर्ष की अवस्था जब मेरी हुई तब माँ-बाप मुझे छोड़कर उस लोक के यात्री बन गये, जिसका रहस्य अभी

नहीं आती ! उस अभागे स्वार्थी विश्वासघाती पर बड़ा क्रोध आया।

"जब मुकदमा ख़त्म हुआ, उस समय, वह अदालत के बाहर खड़ा था। मैं उसकी ओर एक तीव्र-दृष्टि डालता गया। उस दृष्टि में आग बरस रही थी, वह उसकी हड्डी-हड्डी में घुस गई। डर से उसका मुँह सूख गया। ख़ैर, सात वर्ष बाद मैं फिर बाहर निकला।

"दो दिन इधर-उधर घूमते बीत गये। एक दाना तक पेट में नहीं पड़ा। प्रतिहिंसा के लिए भारी आग जलने लगी थी।

"रात को खिड़की तोड़कर एक होटल में घुसा। वहाँ खूब पेट भरकर खाया। चुपचाप—किसीको कुछ मालूम तक न हुआ !

"सात-आठ दिन बाद दल के दो-चार लोगों से मुलाक़ात हुई। उन्होंने चोरी छोड़ दी थी। कोई नौकरी करने लगा था, और कोई खेती। सब कायर थे।

"नया दल बनाया। चुन-चुनकर जवान और हठीले आदमी भर्ती किये।

"उसके बाद खूब समारोह से काम चलने लगा। रोज़

लूट, रोज़ जीत, रोज़ नये-नये मज़े! आनन्द का फ़व्वारा छूटने लगा!—किन्तु, फिर भाग्य पलटा। दल के लोग पकड़े जाने लगे। दल टूट गया। काम बन्द हो गया। क्रोध से मैं उन्मत्त हो गया।

"उसके बाद, एक दिन वह पुराना विश्वासघाती सड़क पर मिल गया। मुझे देखकर वह काँपने लगा। मैंने उसके बालों को अपनी मुट्ठी में पकड़ लिया। कहा—'क्यों? आज?'

"वह गिड़गिड़ाकर कहने लगा—'माफ़ करो सरदार!'

"मैंने कहा, 'विश्वासघाती को मैं माफ़ नहीं कर सकता।'

"उसने कहा, 'मैं तुम्हारा गुलाम हूँ।'

"विश्वासघाती गुलाम को मैं ऐसी ही शिक्षा देता हूँ।" कहकर मैंने उसकी पीठ पर एक ज़ोर की लात मारी। वह पाँच हाथ दूर जा गिरा। मुँह से खून उगलने लगा। मैंने कहा—'उठ, चल!'

"उसे मैं ले चला। मैं तब—ओह, एक राक्षस की तरह हो गया था। मेरा ऐसा सुन्दर गिरोह, पुराने साथियों का दल—केवल इसी विभीषण के कारण टूट गया! शैतान!

मैं काँसियारजारी-जेल में आया। अपनी इच्छा से नहीं, सरकारी हुक्म से—सरकारी दूतों की कड़ी निगरानी में ! पथ की बात भी सुन लो !

साढ़े सात बजे पहरेदार ने आकर मुझे अभिवादन करते हुए कहा—"मेरे साथ आइए, महाशय !"

अदब और क़ायदे में कोई भी त्रुटि नहीं थी ! मैं उठकर उसके पीछे हो लिया ! सिर भारी हो रहा था—पैर ऐसे दुर्बल थे कि चलना मुश्किल हो रहा था। फिर भी चला ! बाहर से एक बार मैंने अपने निर्जन कमरे की ओर देखा। इतने दिनों का आश्रय ! कुछ ममता हो रही थी। आज इस कमरे को मैं सूना कर चला ! परंतु अधिक देर

के लिए नहीं—संध्या तक ज़रूर कोई नया मेहमान इस कमरे में आ जायगा ! वाहरे विधाता का विधान !

आंगन के सामने आचार्य बैठे थे। वह अपना भोजन शेष करने की फ़िक्र में थे। जेल के अध्यक्ष ने आकर मेरे साथ हाथ मिलाया। चार पहरेदारों की देख-भाल में मैं चला।

अस्पताल में एक आदमी ने सलाम किया। उस समय मैं खुले हुए आंगन के बीचोंबीच खड़ा था। साँस लेने में कुछ आराम मिल रहा था। परन्तु कबतक ?

बाहर गाड़ी खड़ी थी—वही गाड़ी जिसमें बैठकर मैं यहाँ आया था। लम्बी गाड़ी—भीतर लोहे की रेलिंग से उसके दो हिस्से बना दिये गये थे, मालूम हो रहा था कि किसी ने लोहे से मकड़ी का जाला बुना हो ! दो अलग-अलग दरवाज़े भी थे—एक पीछे की ओर दूसरा सामने की ओर। गाड़ी के भीतर अंधेरा तो था ही, साथ ही धूल और कूड़ा भी भरा हुआ था। इससे तो मेरा वह जेलख़ाने का कमरा लाख दर्जे अच्छा था ! इस क़ब्र में जीते-जी घुसने के पहले एक बार अच्छी तरह चारों ओर देख लिया। इस मुक्त आकाश की स्मृति को लेकर अंधेरे सागर में कूद

पड़ूँगा ! दरवाज़े के सामने क़तार बाँधकर दर्शक लोग खड़े थे। टपाटप पानी पड़ रहा था। मालूम हो रहा था कि यह पानी दिनभर बन्द न होगा। रास्ता और आंगन कीचड़ से लथपथ हो रहा था!—चारों ओर कुछ उदासी-सी नज़र आती थी।

गाड़ी पर चढ़ा। सामने के कमरे में हथियारबन्द पहरे वालों का दल और आचार्य—पीछे के कमरे में अकेला मैं!

गाड़ी के साथ ही चार हथियारबन्द घुड़सवार! चारों ओर इस प्रकार हथियारबन्द सिपाही—मानों मैं कोई बादशाह था!

गाड़ी चली। पानी से सड़क के पत्थर निकल आये। घोड़े की नाल से खटाखट शब्द हो रहा था।

पीछे एक आवाज़ के साथ जेल का फाटक बन्द हो गया—वह शब्द भी मैंने सुना। मैं मानों कुछ तन्द्रा से आच्छन्न था। कोई डर अथवा चिंता मुझे स्पर्श न करती थी। मानों मुझे जीते-जी क़ब्र में गाड़ दिया हो—कुछ ऐसा ही भाव था। घोड़े के गले में घण्टा बँधा हुआ था—पहिये और घोड़े की नाल से मिलकर गाड़ी का एक विचित्र ही शब्द कान में आ रहा था। मानों आँधी की पीठ पर सवार

होकर मैं कहीं जा रहा होऊँ—किसी निरुद्देश देश की ओर, किसी स्वप्नलोक की ओर, शायद किसी देवकन्या की खोज में !

गाड़ी के भीतर दरवाज़े में जो छेद था, उसीमें से मैं बाहर की ओर देख रहा था। एक जगह बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—"बूढ़े आदमियों के लिए अस्पताल"—इस संसार में आदमियों को बूढ़ा होने की भी फुरसत मिलती है ? आश्चर्य की बात है। मेरी यह तरुण अवस्था ! ख़ैर, जाने दो उन बातों को—

गाड़ी घूमी। दूर पर नोटरडम का गुम्बज दीख रहा है। पेरिस के कोहरे को भेदकर गगनस्पर्शी गुम्बज उठा हुआ है। मैंने सोचा—"वाह ऊपर से चारों ओर एक बार देख लेता तो अच्छा था।"

आचार्य ने बातचीत शुरू की। वह ख़ूब बकते जा रहे थे। रोकने वाला तो कोई था नहीं। आचार्य की आवाज़ से घोड़ों की नालों की आवाज़ में कुछ अधिक मीठापन था। मुझे उनकी ओर ध्यान देने की फुर्सत नहीं थी। रास्ते पर ख़ूब कोलाहल हो रहा था।

सब शब्द कान में आ रहे थे। परन्तु स्वतंत्र-भाव से

नहीं—एक अजीब मिश्र-रागिनी के स्वर में, अथवा मानों झरने से झर-झर कल-कल शब्द से पानी गिर रहा हो !

अचानक सुना, आचार्य कह रहे हैं—"क्या बुरी गाड़ी है यह, एक बात भी सुनाई नहीं देती।"

उनका कहना सच था—बिल्कुल ठीक था।

आचार्य ने कहा—"तुम्हें शायद मेरी बात सुनाई नहीं देती होगी।—हाँ, क्या कह रहा था ? आज पेरिस में क्यों इतना शोर मचा हुआ है, मालूम है ?"

मैं चौंक उठा, क्या कोई नया संवाद भी है ? शायद मेरी फाँसी का हुक्म सुनकर ही यहाँ हल्ला मचा होगा।

आचार्य कहने लगे—"संध्या के पहले अख़बार पढ़ने की फ़ुर्सत भी नहीं मिलेगी। संध्या के समय मैं रोज़ अखबार पढ़ा करता हूँ, उससे दिन के ढलने तक का सब समाचार मिल जाता है, एक भी बाक़ी नहीं छूटता।"

अबतक पहरेदारों का मुखिया चुप बैठा था, वह बोल उठा—"ऐसी मज़ेदार ख़बर, और आपको अभी तक मालूम ही नहीं है ?"

मैंने कहा—"मुझे तो शायद मालूम है।"

उसने कहा—"आपको मालूम है ? ताज्जुब की बात है ! कहिए तो सही !"

होकर मैं कहीं जा रहा होऊँ—किसी निरुद्देश देश की ओर, किसी स्वप्नलोक की ओर, शायद किसी देवकन्या की खोज में !

गाड़ी के भीतर दरवाज़े में जो छेद था, उसीमें से मैं बाहर की ओर देख रहा था। एक जगह बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—"बूढ़े आदमियों के लिए अस्पताल"—इस संसार में आदमियों को बूढ़ा होने की भी फुरसत मिलती है ? आश्चर्य की बात है। मेरी यह तरुण अवस्था ! खैर, जाने दो उन बातों को—

गाड़ी घूमी। दूर पर नोटरडम का गुम्बज दीख रहा है। पेरिस के कोहरे को भेदकर गगनस्पर्शी गुम्बज उठा हुआ है। मैंने सोचा—"वाह ऊपर से चारों ओर एक बार देख लेता तो अच्छा था।"

आचार्य ने बातचीत शुरू की। वह खूब बकते जा रहे थे। रोकने वाला तो कोई था नहीं। आचार्य की आवाज़ से घोड़ों की नालों की आवाज़ में कुछ अधिक मीठापन था। मुझे उनकी ओर ध्यान देने की फुर्सत नहीं थी। रास्ते पर खूब कोलाहल हो रहा था।

सब शब्द कान में आ रहे थे। परन्तु स्वतंत्र-भाव से

नहीं—एक अजीब मिश्र-रागिनी के स्वर में, अथवा मानों झरने से झर-झर कल-कल शब्द से पानी गिर रहा हो !

अचानक सुना, आचार्य कह रहे हैं—"क्या बुरी गाड़ी है यह, एक बात भी सुनाई नहीं देती ।"

उनका कहना सच था—बिलकुल ठीक था ।

आचार्य ने कहा—"तुम्हें शायद मेरी बात सुनाई नहीं देती होगी ।—हाँ, क्या कह रहा था ? आज पेरिस में क्यों इतना शोर मचा हुआ है, मालूम है ?"

मैं चौंक उठा, क्या कोई नया संवाद भी है ? शायद मेरी फाँसी का हुक्म सुनकर ही यहाँ हल्ला मचा होगा ।

आचार्य कहने लगे—"संध्या के पहले अख़बार पढ़ने की फुर्सत भी नहीं मिलेगी । संध्या के समय मैं रोज़ अखबार पढ़ा करता हूँ, उससे दिन के ढलने तक का सब समाचार मिल जाता है, एक भी बाक़ी नहीं छूटता ।"

अबतक पहरेदारों का मुखिया चुप बैठा था, वह बोल उठा—"ऐसी मज़ेदार ख़बर, और आपको अभी तक मालूम ही नहीं है ?"

मैंने कहा—"मुझे तो शायद मालूम है ।"

उसने कहा—"आपको मालूम है ? ताज्जुब की बात है ! कहिए तो सही !"

"क्या तुम सुनने को बहुत व्याकुल हो?"

उसने कहा—"हाँ, अवश्य ही। राज्य के मामले में हर एक को बोलने का अधिकार है—चाहे वह कोई भी हो। आप क़ैदी हैं तो क्या हुआ? मैं राष्ट्रीय सेना में था; बचपन में मैं उसका कप्तान था। वह दिन भी बड़े प्यारे थे।"

मैंने टोककर कहा—"नहीं महाशय, मैंने कोई और ही बात सोची थी।"

उसने कहा—"और बात? क्या कहते हैं आप? आपको कैसे मालूम हुआ? किसने कहा आपको? कहिए तो सही क्या ख़बर है, सुनूँ ज़रा।"

आचार्य ने पूछा—"तुमने क्या सोचा था?"

मैंने कहा—"शाम के बाद मुझे सोचने के लिए कुछ न मिलेगा, बस इतना ही मैं सोच रहा था।"

आचार्य ने कहा—"चच् चच्! बड़े दुःख की बात है, तुम्हें अत्यन्त चिन्ता हो रही है। परन्तु जी को ढाढ़स दो। मन को मज़बूत करो।"

मुखिया पहरेदार बोला—आप बहुत रंजीदा मालूम होते हैं? कास्तेगाँ को जब हम यहाँ लाये थे तो वह सारे रास्ते हँसाता-हँसाता आया था!"

फिर वह अपने अनुभव की बातें करने लगा, पापाना को भी वही लाया था। सारा रास्ता वह चुरुट पीता आया था और स्वले के वे विद्रोही लड़के ऐसे हँसते-चिल्लाते आये थे कि कुछ न पूछिए।

आचार्य ने कहा—"कष्ट और दुःख पाना तो पागलपन है; बुद्धि का दोष है। परन्तु महाशय आप बहुत ही विमर्ष मालूम होते हैं। आपकी इतनी कम उम्र!"

स्वर को यथासाध्य तीव्र कर मैंने कहा—"कम उम्र! क्या कहते हैं आप? आपसे मेरी उम्र अधिक है। मेरी उम्र प्रति घण्टा १० वर्ष बढ़ रही है।"

आचार्य ने हँसकर कहा—"क्यों मज़ाक करते हो, मेरी उम्र तुम्हारे परदादा के बराबर होगी।"

मैंने गम्भीर भाव से कहा—"नहीं मज़ाक आप करते होंगे, मैं ठीक कह रहा हूँ।"

आचार्य ने हुलास की डिबिया निकाली। उसको खोलते-खोलते मेरी ओर देखकर कहने लगे,—"नाराज़ न होना भाई—"

मैंने कहा—"नहीं-नहीं, नाराज़ होने की कौन सी बात है।"

इसी समय एक धक्का लगा और उनकी हुलास की डिबिया उलटकर गिर पड़ी—सब हुलास गिर गया। घबराकर खाली डिबिया को उठाते हुए आचार्यजी बोले—"राम राम ! सब हुलास गिर गया, अब क्या करूँ ?"

मैंने कहा—"क्या करेंगे, दुःख भी क्या है ? आराम-सुख सब तुच्छ है। मेरी ओर देखने में आपको शान्ति मिलेगी।"

आचार्यजी गरज उठे—"रहने दो अपने मज़ाक़ को, बड़े तुच्छ करने वाले आये !—तुम्हें दुःख भी क्या है ? मैं ठहरा बूढ़ा आदमी—बिना हुलास के इतना रास्ता कटना—हाय हाय !"

देखा न आचार्य की बात। मेरे कष्ट से उनका कष्ट अधिक है, कारण उनका हुलास गिर पड़ा है। कैसे स्वार्थान्ध हैं ये पुरोहितगण !

हुलास के दुःख से आचार्य महाशय चुप और गुम होकर बैठ गये। उनकी बकवास बन्द हो गई। गाड़ी के भीतर फिर एक सन्नाटा छा गया। घर-घर घर-घर करती हुई गाड़ी उसी गति से चलती रही।

आखिर गाड़ी शहर के भीतर, चुङ्गीघर के सामने,

आकर ठहर गई। वहाँ से कर्मचारीगण आकर गाड़ी के भीतर परीक्षा कर गये। यदि हम भेड़ या बकरे होते तो यहाँ कुछ दक्षिणा देनी पड़ती, परन्तु अफ़सोस कि हम मनुष्य थे, बिना महसूल दिये ही छुटकारा पा गये।

उसके बाद गाड़ी कई छोटी-बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों पर से घूमती हुई उस चौड़ी सड़क पर आ पहुँची, जो सीधी कॉंसियारजारी को ले जाती थी। सड़कों पर लोग अवाक् होकर गाड़ी की ओर देख रहे थे। अख़बार बेचनेवाले इधर-उधर दौड़ रहे थे।

साढ़े आठ बजे हम कॉंसियारजारी आ पहुँचे। सामने ही विराट् जेलख़ाना। उसका बड़ा भारी लोहे का फाटक। देखकर मेरा खून ठण्डा हो गया। गाड़ी ठहर गई। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि शायद मेरे हृदय की क्रिया भी ठहर गई।

किसी प्रकार साहस को इकट्ठा कर मैं उतरने को तैयार हुआ। दरवाज़ा भी उसी समय खुल गया। गाड़ी के अँधेरे कमरे में से मैं कूदकर नीचे उतर पड़ा। दो पहरेदारों ने आकर दोनों तरफ़ से मेरे हाथ पकड़ लिये। दोनों ओर क़तार बाँधकर सेना खड़ी थी। बीच में मैं चला। बाहर हमें देखने के लिए एक ख़ासी भीड़ जमा थी।

उसी सेना की श्रेणी के बीच चलते हुए मुझे कुछ आराम का अनुभव होने लगा, मानों मैं स्वाधीन हूँ, क़ैदी नहीं हूँ। परन्तु जब सीढ़ियों को पार करता हुआ उन अँधेरे कमरों की ओर जा पहुँचा, उस समय फिर विरक्ति और अवसाद ने आकर मुझे आच्छन्न कर लिया।

पहरेदार बराबर साथ आ रहे थे! आचार्य दो घण्टे बाद फिर मिलने की प्रतिज्ञा कर कहीं चले गये। उनको और भी न जाने क्या-क्या काम था?

हम अध्यक्ष के कमरे में आये। उनके हाथ में पहरेदार ने मुझे सौंप दिया। मुझे कुछ हँसी आई—मेरे कैसे प्रियजन को इसने मुझे सौंप दिया है।

अध्यक्ष महाशय उस समय कुछ व्यस्त थे। पहरेदार

से उन्होंने कहा—"ज़रा सब्र करो, मैं अभी समझ लेता हूँ।"

ठीक ही तो है,—जमा-ख़र्च के खाते का हिसाब न मिलाकर वह एक मनुष्य को खाते में कैसे जमा कर सकते हैं? उस समय वह किसी और अभागे क़ैदी की भाग्यलिपि की ओर झुके हुए थे। पहरेदार ने कहा—"अच्छा, तबतक मैं भी अपने काग़ज़ों को सम्हाल लूँ।"

काग़ज़ों का एक पुलिन्दा निकालकर पहरेदार उसीमें तन्मय हो गया। मैं एक कोने में खड़ा रहा। लोहे की मोटी छड़ों के भीतर से आसमान नज़र आ रहा था—धूप देखकर मालूम हो रहा था, मानों आकाश के शरीर को किसी ने रंग दिया हो! उज्ज्वल नीला आकाश—अहा!

ऊपर की ओर मैं एक दृष्टि से देख रहा था। मैं सोच रहा था, यहाँ मैं खड़ा हूँ, और मेरी स्त्री-कन्या? वे भी इसी आकाश के नीचे हैं। न मालूम इस जीवन में उनके साथ कभी साक्षात् होगा या नहीं।

पहरेदार मुझे पास की एक छोटी-सी कोठरी में ले आया, उसमें बिलकुल अन्धकार छा रहा था। उसमें दो खिड़कियाँ थीं, जो लोहे की जाली से घिरी हुई थीं। एक खिड़की के पास आकर मैं बैठ गया।

कबतक बैठा रहा, यह ठीक याद नहीं। अकस्मात् अट्टहास के शब्द से, मैंने पीछे की ओर देखा। यह क्या, एक और आदमी ! उम्र उसकी कोई पचास से ज़्यादा ही होगी—पीठ झुक रही थी, बाल पक गये थे, फिर भी यह खूब मज़बूत मालूम हो रहा था; आँख और मुख पर एक विकट भाव था; उसकी ओर देखने से कुछ भय भी मालूम हुआ।

मैंने पहले उसे देखा नहीं था, परन्तु वह इसी कमरे में बैठा हुआ था।

आश्चर्य ! यही क्या मृत्यु है—आज ऐसा भेष बनाकर मुझे तैयार करने के लिए आई है ?

उसने कहा, "अजी, किस चिन्ता में निमग्न हो ? कबसे बैठा हूँ और मेरी ओर देखा तक नहीं ! क्या नाम है तुम्हारा ?"

मैंने उत्तर नहीं दिया। केवल उसकी ओर आँखें फाड़-कर देखने लगा।

उसने कहा—'मेरी ओर क्या देख रहे हो ? मैं एक लगेज हूँ—स्टेशन की मुहर मेरे ऊपर लग चुकी है, अब केवल रेल आने तक की देर है।"

"मैंने जेब से छुरी निकाली। उसके दोनों कान काट दिये। वह बेहोश होकर गिर पड़ा। मेरे सिर में आग-सी जल रही थी। मैं वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

"उसके बाद पुलिस में जाकर उसने इज़हार दिया। एक दिन अस्पताल में वह मर गया। मैं भी पकड़ा गया। मुझे फाँसी का हुक्म हो गया है। ठीक ही तो हुआ है। क्या कहते हो? एक तरह से मैंने ही उसकी जान ली है। ख़ैर, जनता के लिए मुझे चिन्ता नहीं है। चोरी करते-करते जी भी कुछ ऊब गया था। मामूली चोरी में मुझे कभी आनन्द नहीं मिलता। काफ़ी अक्ल ख़र्च करता था। वैसे अक्लमंद और हिम्मतवाले साथी भी अब कहाँ मिलते हैं? इसीलिए अब जीवन में कोई विशेष आकर्षण नहीं है। मरने के पहले विश्वासघाती को अपने हाथ से दण्ड दे दिया, यह भी कुछ कम आनन्द की बात नहीं है। और भी दो-एक चोरी के क़िस्से सुनाता हूँ। समझ जाओगे कि मैं कितना अक्लमंद था। मेरी ऐसी अक्ल को फाँसी की रस्सी में झूलना पड़ेगा, यह एक अफ़सोस की बात ज़रूर है। पर, ख़ैर, देश का दुर्भाग्य!"

उसकी बातें सुनकर मुझे रोमांच हो रहा था। इस पिशाच का, इस राक्षस का साथ न जाने कब छूटेगा?

उसने कहा—"तुम बड़े सीधे आदमी मालूम होते हो! राम-राम; फाँसी पर जा रहे हो। अब भी तुम्हें अफ़सोस हो रहा है। इसीमें तो मज़ा है, यह नहीं मालूम? मौज करो, आनंद करो, लोग जानेंगे कि हाँ, फाँसी पर भी यह आदमी डरता नहीं है। मृत्यु इसके लिए खेल है। देखकर सब अवाक् और स्तम्भित हो जायँगे। बहादुर कहेंगे। मुँह देखो न? कैसे मज़े में हूँ! आख़िर अफ़सोस करने से कुछ नतीजा तो हासिल होगा ही नहीं!"

मैंने कहा—"आप सचमुच महाशय हैं!"

क़हक़हा मारकर वह फिर हँस उठा। उस हँसी के विकट शब्द से सारा कमरा गूँज उठा। उसने कहा—"ओहो 'महाशय', आप लोग सफ़ेदपोश हैं, 'महाशय' हैं, यह तो मुझे याद ही नहीं था! लेकिन महाशयों को फाँसी दी जाती है—यह बड़े अचम्भे की बात है!"

उसकी बातों में काफ़ी व्यंग था। मैं चुप रहा। वह कहने लगा—"क्या आपको केवल आचार्य के आने तक काफ़ी विलम्ब है! अच्छा, आप तो ज़मींदार हैं। फाँसी पर चढ़ने जा रहे हैं। अपना यह सुंदर कोट क्या व्यर्थ ही ख़राब

करेंगे ? मुझे दे दीजिए ! कुछ जाड़ा भी कटेगा, और नहीं तो बेच-बाचकर चुरुट मँगाने की तदबीर करूँगा।"

मैंने कोट खोल दिया ! ठंड से शरीर काँपने लगा। उसने कहा—"आप अमीर आदमी हैं। यह जाड़ा आप बर-दाश्त नहीं कर सकेंगे। रहने दीजिए, आप पहन लीजिए अपने कोट को।"

उसने कोट को मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने कहा—"नहीं, बरदाश्त कर लूँगा, कोट आप ले लीजिए !"

खिड़की के पास आकर वह कोट को अच्छी तरह देखने लगा—कुछ देर तक उलट-पलटकर उसे देखता रहा, फिर बोला, "यह तो बिलकुल नया मालूम होता है। खैर, ठीक है, आपकी कृपा से छः हफ्ते तक चुरुट और तम्बाकू का अभाव नहीं होगा। धन्यवाद, महाशय ! कुछ बुरा न मानना, हम ग़रीब ठहरे। बातें करना तो आता ही नहीं।"

इसी समय अध्यक्ष भीतर आये ! मुझको एक पहरेदार के ज़िम्मे कर दिया और उसको दो पहरेदारों के हाथ में देकर बाहर चले गये।

हम लोग भी बाहर आये। बाहर आकर उसने कहा—

"भूलना नहीं महाशय, यहाँ यहीं आखिरी मुलाकात है। फिर छः हफ्ते बाद मिलेंगे। वहाँ आप मेरा इंतज़ार करना।"

उसकी बातों को सुनकर मेरा हृदय काँप उठा। क्या कहता है यह ? पागल है या बेवकूफ़ ? कौन है यह ?

वह था बड़ा मज़े का आदमी। मेरा कोट लेकर साफ़ चलता बना।

क्या मैंने दान कर दिया?—नहीं, ठीक दान तो नहीं किया। मैंने सोचा, वह मज़ाक़ कर रहा होगा, फिर मुरव्वत के खयाल से वापस न ले सका।

पक्का और पुराना चोर है! पैरों से जिसको दल सकता हूँ, वह मुझे मित्र के नाम से सम्बोधन कर गया?

मेरा हृदय क्रोध से क्षुब्ध हो गया! मृत्यु मेरे सिरहाने खड़ी है। अभी निर्दयी की भाँति वह मुझे पीस डालेगी। अभी तक धनी-सम्प्रदाय का अहंकार मेरी हड्डियों में भरा है! मूर्ख हूँ मैं! बेवकूफ़ हूँ!

फाँसी की डोर धनी और निर्धन का विचार न करेगी।

जिस राज्य में जा रहा हूँ, वहाँ धनी और निर्धन का विचार न होगा।

जो डोर उसके गले में पड़ेगी, वही डोर मुझे भी पार पहुँचायगी ! मुक्ति देगी ! हाँ, वह मेरा मित्र ही तो है ! परम-मित्र है !

वायुहीन रुद्ध एक छोटे-से कमरे में, फिर मैं बन्दी हूँ। बन्दी हो गया हूँ, इसलिए क्या प्रकाश और हवा पर मेरा कोई अधिकार नहीं है? विचार के नाम पर मनुष्य, मनुष्य के प्रति, यह अन्याय क्यों करता है? यदि सज़ा देना ही उनका उद्देश्य हो, तो इससे भी कम खर्च में और भी सरल उपाय का तो अभाव नहीं था। वही पुराने युग में जो होता था—एक थैली के भीतर बन्द कर, नदी में डुबा देने से ही तो बहुत शीघ्र काम तमाम हो जाता। इतनी ज़बर्दस्त तैयारी और कड़े पहरे की बहुत-सी मिहनत बच जाती।

कमरे में बिस्तर नहीं था। मैंने चौकीदार को बुलाकर बिस्तर लाने के लिए कहा। वह अवाक् होकर मेरी

ओर देखता रहा—मानों आसमान से गिरा है। शायद उसे आश्चर्य हो रहा था कि जो शख़्स छः घण्टे बाद फाँसी पर चढ़ा दिया जायगा, उसे बिस्तर की क्या ज़रूरत ?

जो हो, उसी समय कमरे में जेल के अध्यक्ष ने बिस्तर लगवा दिया। वह बड़े दयालु हैं। मरते समय कम से कम उनकी दया की बात तो सोचता हुआ मरूँगा। कमरे के दरवाज़े पर एक पहरेदार खड़ा रहा, जिससे बिस्तर की चादर से मैं अपनी फाँसी अपने आप न लगा लूँ—सरकार के जल्लाद को कहीं धोखा न दे बैठूँ !

ठीक दस बजे हैं।

मुझे मेरी की याद आ रही है। अभागिनी कन्या मेरी! छः घण्टे बाद मैं कहाँ रहूँगा और यह पृथ्वी कहाँ रहेगी? अस्पताल की मेज़ पर मेरा प्राणहीन शरीर पड़ा रहेगा। देह की चीरा-फाड़ी कर फिर वे साँस लेंगे। मेरी बोटी-बोटी काटी जायगी। हाय, मेरी, तुम्हारे पिता के जीवन का यह परिणाम है!

फिर भी आज इनके व्यवहार से यह नहीं कहा जा सकता कि ये मुझसे घृणा करते हैं। करुणा से सबका मन भरा हुआ है। मेरी सेवा में कुछ भी त्रुटि नहीं हो रही है। फिर भी ये मुझे जीने नहीं देंगे! करुणा—परन्तु कैसी

निर्मम करुणा है यह ! मेरी हत्या ये अवश्य करेंगे। किसी प्रकार भी नहीं रुक सकते।

बेचारी मेरी ! अभागिनी बेटी ! पिता के आदर में तुम घिरी हुई थीं। पिता से एक चुम्बन पाकर तुम तृप्त हो जाती थीं। जब तुम्हारे केश के गुच्छों को लेकर मैं आदर से मरोड़ा करता था, तो तुम्हारे नरम और लाल होटों के भीतर से हँसी का फ़व्वारा निकल पड़ता था। आनन्द की हँसी सारे गृह में एक संगीत की मूर्च्छना भर देती थी। उसके बाद रात को सोने से पहले अपने पिता के साथ तुम हाथ जोड़कर बैठ जाती थीं। तुम्हारा वन्दना-गान सारे दिन के परिश्रम और श्रांति को हलका कर देता था। अहा, तुम्हारी आराधना कैसी आवेगपूर्ण थी ! ऐसा सुख का साम्राज्य मेरा ! हाय, आज वह सब स्वप्न में परिणत होगया ! हाय, प्यारी बेटी ! उस प्रकार तुम्हें छाती से लगाकर कौन तुम्हारे मुख को असंख्य चुम्बनों से भर देगा ?—उस तरह कौन तुम्हारा आदर करेगा ? सबके छोटे-छोटे बच्चे अपने-अपने पिता की स्नेह-पूर्ण गोद में बैठकर किसी मेले और तमाशे में हँसते हुए जायँगे, उस समय तुम्हारी आँखों में वेदना के आँसू डबडबायँगे—एक हृदय-भेदी वेदना तुम्हारे सुन्दर मुख

को म्लान कर देगी। व्यथित आँखें इधर-उधर अर्थहीन दृष्टि दौड़ायेंगी। नव-वर्षारम्भ और अपने जन्म-दिन पर तुम कोई उपहार न पाओगी, किसी का आदर तुम्हारे हृदय का स्पर्श न करेगा। हायरी मेरी अभागिनी कन्या, तुम्हारे फूल के समान प्राण को क्या कोई भी तृप्त न करेगा? पितृहीन, अनाथिनी मेरी!

यदि वे जूरी एक बार मेरी को देख लेते, तो शायद यह मृत्यु-दण्ड देने के पहले उन्हें उसका भी ख़याल होता। उसके म्लान नेत्रों की ओर देखकर उनका कठोर चित्त अवश्य चंचल हो जाता, इसमें कोई संदेह नहीं है—नहीं, कोई संदेह नहीं है! मेरी के लिए मेरा प्राण भी शायद बच जाता।

मेरी! जब वह बड़ी होगी, जब होश सम्हालेगी, सब बातें समझने लगेगी, तब मैं कहाँ रहूँगा? उस समय तो मेरा नाम पेरिस की कलंक-स्मृति में लिखा होगा। मेरा नाम सुनकर क्या उसका प्राण काँप न उठेगा! मेरा नाम सुनते ही लज्जा से उसका अन्तःकरण फटने लगेगा। लोगों की घृणा उसको भी हमेशा जलाती रहेगी। मेरी! मेरी प्यारी कन्या मेरी! पिता के नाम पर सहानुभूति के

दो बूँद आँसू क्या तुम न डालोगी—अथवा घृणा की आग तुम मेरे नाम पर बरसाओगी ? नहीं, नहीं, मेरी ! तुम दो बूँद आँसू से मेरा तर्पण करना, मैं तृप्त हो जाऊँगा—केवल दो बूँद आँसू ! हाय भगवान, ऐसा कौन-सा अपराध मैंने किया है, ऐसा कौन-सा महापाप मैंने किया है, कि समाज इस प्रकार निर्मम और निष्ठुर भाव से मुझे पीस डालना चाहता है ?

आज का सूर्य जब अस्त हो जायगा, तब मैं कहाँ रहूँगा ? इस पृथ्वी का सारा अस्तित्व मेरे लिए उस समय लोप हो जायगा। आज मेरे जीवन का अन्तिम दिन है। क्या यह सच है—अथवा यह स्वप्न है ?

बाहर वह काहेका कोलाहल हो रहा है ? शायद मेरी मृत्यु देखने के लिए लोग दौड़े आ रहे हैं। कुतूहली दर्शक, स्पर्धित प्रहरी, सज्जित आचार्य—मुझे देखने के लिए सबका आग्रह एकसाथ जग उठा है। मृत्यु ! तुम सचमुच आज मुझे ग्रहण करोगी ? मुझको ?—जो मैं इस समय बैठा हुआ हूँ, साँस ले रहा हूँ, बातें सुन रहा हूँ, वायु का स्पर्श अनुभव कर रहा हूँ, वही मैं ! मर जाऊँगा ?

ये बातें क्या मैं नहीं जानता? हाँ, जानता हूँ! ग्रे-टी-ग्रीन के पास से जा रहा था—वह बहुत दिनों की बात है। उस समय दिन के ग्यारह बजे थे। अचानक मेरी गाड़ी रुक गई!

रास्ते पर हज़ारों की भीड़ इकट्ठी थी! गाड़ी में से मैंने सिर निकालकर देखा, जवान-बूढ़ों से सारा रास्ता खचाखच भरा है! चारों ओर अनगिनती खोपड़ियाँ नज़र आती थीं। दीवारों पर, छत पर, पेड़ों की डालियों पर—कोई भी जगह खाली न थी। दूर पर फाँसी का तख़्ता भी नज़र आता था। फाँसी का सब सामान तैयार था।

आज भी वही दिन है! परन्तु आज मैं दर्शक नहीं हूँ। आज लोगों की भीड़ मुझे देखने को इकट्ठी हुई है! वैसी ही भीड़ जमेगी।

केवल एक डोरी को अवलम्बन बनाऊँगा—साथ ही पलक

मारते-न-मारते एक अतल-स्पर्श अंधकार के भीतर घुस जाऊँगा—विराट अंधकार; उसके बाद ?—

एक पत्थर भी यदि मिल जाता तो अपने सिर को यहीं फोड़ लेता !

माफ़ी ! अरे मुझे माफ़ी देदो, मुझे क्षमा करो !—शायद माफ़ी मिल भी जाय ! राजा को दया आ जाय तो—शायद माफ़ी की ख़बर लेकर दूत आता होगा ! आओ दूत ! जल्दी आओ ! यह सारा अंधकार अचानक ग़ायब हो जायगा।
—एक तीव्र दीप्त मुक्त-प्रकाश के राज्य में मैं प्रवेश करूँगा ! जय के उल्लास से मेरा सारा मन प्रफुल्ल हो जायगा।

मुझे प्राणों की भिक्षा देदो ! स्नेह और ममता में भरी हुई यह सुन्दर पृथ्वी, मेरा प्राण इसे छोड़ना नहीं चाहता ! मेरी रक्षा करो। गर्म लोहे से मेरे शरीर पर छाप लगा दो, मुझे कहीं जाने मत दो—बीस वर्ष, पचीस वर्ष तक मुझे जेल में बन्द कर रक्खो। केवल इस आसमान, हवा और सूर्य के प्रकाश से मुझे वंचित मत करो। क़ैदी—वह भी चलता है, सोचता है, बातें करता है; वह भी सुखी है। केवल इस प्राण को न लो, भीख दे दो। बस, और कुछ नहीं चाहता।

आचार्य लौट आये। सफ़ेद बाल, नम्र प्रकृति और मीठी-मीठी बातें! देखने से श्रद्धा होती है।

आज सवेरे भी मैंने उन्हें क़ैदियों में ज्ञान वितरण करते देखा है। परन्तु उससे मेरा क्या लाभ? उनकी बातों में मेरा जी नहीं लगता। पानी जैसे काँच पर से फिसल जाता है, उनकी बातें भी मेरे मन से उसी प्रकार फिसल जाती थीं।

फिर भी उनको देखकर कुछ धीरज मिला। चारों ओर के इस बीभत्स दृश्य के भीतर उनमें कुछ कोमलता मालूम पड़ी।

हम दोनों बैठ गये—वह कुर्सी पर और मैं अपनी जीर्ण शय्या पर।

आचार्य लौट आये। सफ़ेद बाल, नम्र प्रकृति और मीठी-मीठी बातें! देखने से श्रद्धा होती है।

आज सवेरे भी मैंने उन्हें क़ैदियों में ज्ञान वितरण करते देखा है। परन्तु उससे मेरा क्या लाभ? उनकी बातों में मेरा जी नहीं लगता। पानी जैसे काँच पर से फिसल जाता है, उनकी बातें भी मेरे मन से उसी प्रकार फिसल जाती थीं।

फिर भी उनको देखकर कुछ धीरज मिला। चारों ओर के इस बीभत्स दृश्य के भीतर उनमें कुछ कोमलता मालूम पड़ी।

हम दोनों बैठ गये—वह कुर्सी पर और मैं अपनी जीर्ण शय्या पर।

उन्होंने कहा, -- "भाई !"

उनके सम्बोधन ने मेरे प्राण को शीतल कर दिया ।

उन्होंने पूछा—"क्या ईश्वर पर तुम्हें विश्वास है ?"

मैंने कहा, "है ।"

"यह उदार कैथलिक धर्म—क्या इसपर तुम्हारी श्रद्धा है ?"

मैंने उत्तर दिया, "अवश्य ।"

"तो सुनो," आचार्य कहने लगे । क्या कहने लगे, यह मुझे याद नहीं; कब तक कहते रहे, यह भी मैं नहीं जानता। अकस्मात् उन्होंने कहा, 'क्या ?' मैं दूसरी ओर देख रहा था—चौंक उठा । मैं उठ खड़ा हुआ और बोला, "कृपया मुझे एकांत में रहने दीजिए । मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।"

"तो अब मैं कब आऊँ, कहो ?"

"मैं कहला भेजूँगा ।"

वह उठ खड़े हुए, मृदु कण्ठ से उन्होंने उच्चारण किया, "नास्तिक !"

नास्तिक !—नहीं, चाहे मैं कितना ही नीच क्यों न होऊँ परन्तु नास्तिक नहीं हूँ । भगवान जानते हैं, उनके प्रति मेरा विश्वास कितना गम्भीर है । परन्तु यह आचार्य नई बात

क्या सुनायगा ! मेरी दुःखी आत्मा को तृप्त करने की क्षमता इसमें कहाँ है ? इसका सामर्थ्य ही कितनी है ? तनख्वाह लेकर दो-चार रटे हुए शब्दों के उच्चारण से कहीं किसी को शान्ति मिल सकती है ?

खूनी और डाकुओं के सामने रटे हुए वाक्यों को बकना जिसका पेशा है, क्षुब्ध आत्मा को शान्त करने की चेष्टा उसके लिए धृष्टता नहीं तो क्या है ? भगवान के नाम पर यह कैसी धोखेबाज़ी है ? विधाता के नाम पर यह कैसा परिहास है ? फिर भी राजधर्म-द्वारा अनुमोदित होकर यह प्रथा कितने दिनों से प्रचलित हो रही है ! अफसोस !!

परन्तु यह बूढ़ा आचार्य ! इसका भी दोष क्या है ? इसकी शिक्षा ही क्या है—ज्ञान भी कितना-सा है ? तुच्छ इने-गिने रुपयों के लोभ में वह यह काम कर रहा है ! यही उसकी जीविका का अवलम्बन है । नहीं तो यह पेट कैसे भरेगा ? मुझे इस प्रकार की अश्रद्धा दिखानी न चाहिए ! परन्तु उपाय भी क्या है ? मेरी साँस के स्पर्श से चारों दिशायें जली जा रही हैं । मुख से विष निकल रहा है । मैं क्या करूँ, भवितव्य कठिन है !

उन्होंने कहा,--"भाई !"

उनके सम्बोधन ने मेरे प्राण को शीतल कर दिया।

उन्होंने पूछा—"क्या ईश्वर पर तुम्हें विश्वास है ?"

मैंने कहा, "है।"

"यह उदार कैथलिक धर्म—क्या इसपर तुम्हारी श्रद्धा है ?"

मैंने उत्तर दिया, "अवश्य।"

"तो सुनो," आचार्य कहने लगे। क्या कहने लगे, यह मुझे याद नहीं; कब तक कहते रहे, यह भी मैं नहीं जानता। अकस्मात् उन्होंने कहा, 'क्या ?' मैं दूसरी ओर देख रहा था—चौंक उठा। मैं उठ खड़ा हुआ और बोला, "कृपया मुझे एकांत में रहने दीजिए। मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।"

"तो अब मैं कब आऊँ, कहो ?"

"मैं कहला भेजूँगा।"

वह उठ खड़े हुए, मृदु कण्ठ से उन्होंने उच्चारण किया, "नास्तिक !"

नास्तिक !—नहीं, चाहे मैं कितना ही नीच क्यों न होऊँ परन्तु नास्तिक नहीं हूँ। भगवान जानते हैं, उनके प्रति मेरा विश्वास कितना गम्भीर है। परन्तु यह आचार्य नई बात

क्या सुनायगा ! मेरी दुःखी आत्मा को तृप्त करने की क्षमता इसमें कहाँ है ? इसको सामर्थ्य ही कितनी है ? तनख्वाह लेकर दो-चार रटे हुए शब्दों के उच्चारण से कहीं किसी को शान्ति मिल सकती है ?

खूनी और डाकुओं के सामने रटे हुए वाक्यों को बकना जिसका पेशा है, क्षुब्ध आत्मा को शान्त करने की चेष्टा उसके लिए धृष्टता नहीं तो क्या है ? भगवान के नाम पर यह कैसी धोखेबाज़ी है ? विधाता के नाम पर यह कैसा परिहास है ? फिर भी राजधर्म-द्वारा अनुमोदित होकर यह प्रथा कितने दिनों से प्रचलित हो रही है ! अफ़सोस !!

परन्तु यह बूढ़ा आचार्य ! इसका भी दोष क्या है ? इसकी शिक्षा ही क्या है—ज्ञान भी कितना-सा है ? तुच्छ इने-गिने रुपयों के लोभ में वह यह काम कर रहा है ! यही उसकी जीविका का अवलम्बन है। नहीं तो यह पेट कैसे भरेगा ? मुझे इस प्रकार की अश्रद्धा दिखानी न चाहिए ! परन्तु उपाय भी क्या है ? मेरी साँस के स्पर्श से चारों दिशायें जली जा रही हैं। मुख से विष निकल रहा है। मैं क्या करूँ, भवितव्य कठिन है !

उन्होंने कहा,--"भाई!"

उनके सम्बोधन ने मेरे प्राण को शीतल कर दिया।

उन्होंने पूछा—"क्या ईश्वर पर तुम्हें विश्वास है?"

मैंने कहा, "है।"

"यह उदार कैथलिक धर्म—क्या इसपर तुम्हारी श्रद्धा है?"

मैंने उत्तर दिया, "अवश्य।"

"तो सुनो," आचार्य कहने लगे। क्या कहने लगे, यह मुझे याद नहीं: कब तक कहते रहे, यह भी मैं नहीं जानता। अकस्मात् उन्होंने कहा, 'क्या?' मैं दूसरी ओर देख रहा था—चौंक उठा। मैं उठ खड़ा हुआ और बोला, "कृपया मुझे एकांत में रहने दीजिए। मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।"

"तो अब मैं कब आऊँ, कहो?"

"मैं कहला भेजूँगा।"

वह उठ खड़े हुए, मृदु कण्ठ से उन्होंने उच्चारण किया, "नास्तिक!"

नास्तिक!—नहीं, चाहे मैं कितना ही नीच क्यों न होऊँ परन्तु नास्तिक नहीं हूँ। भगवान जानते हैं, उनके प्रति मेरा विश्वास कितना गम्भीर है। परन्तु यह आचार्य नई बात

पहरेदार मेरे लिए नाना प्रकार के भोजन ले आया। यही मेरे इस जीवन में आख़री खाना होगा।

ख़ूब तो खा चुका। ऐसी तुच्छ घृणा, ऐसी हीनता! नहीं, यह मेरे गले के नीचे नहीं उतरेगा।

सिर पर टोपी ओढ़े एक आदमी अकस्मात् आकर खड़ा हो गया। कुछ व्यस्त भाव, किसी ओर भी लक्ष्य नहीं है! हाथ में गज़ का फ़ीता और बग़ल में काग़ज़ों का बंडल! आते ही वह दीवार नापने लगा। 'अच्छा पाँच फुट। यहाँ बदलना पड़ेगा' इत्यादि बातें वह एक पहरेदार से करने लगा। और भी न जाने क्या-क्या बकने लगा!

पहरेवाले के मुँह से सुना, वह एक ठेकेदार है! जेल-खाने का नया संस्कार होगा, वह इसीका नाप ले रहा है!

काम ख़तम करके उसने मुझसे कहा,—"आपको क्या आज फाँसी होगी?"

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह एकटक मेरी ओर देखता रहा!

उसने कहा—"छः महीने के बाद इस जेल को पहचानना मुश्किल हो जायगा! सब रद्दोबदल हो जायगा, तब देखने में बहुत सुन्दर हो जायगा।"

अर्थात् उसके कहने का सारांश यह था—"मैं बड़ा ही अभागा हूँ कि नई जेल देखना मेरे भाग्य में लिखा नहीं है—!"

उसके मुख पर एक सूखी हँसी भी दिखाई दी। पहरेवाले ने उससे कहा,—"यहाँ खड़े होने का हुक्म नहीं है! आपका काम हो गया हो तो बाहर चलिए!"

वह चला गया और मैं—जिस पत्थर की दीवार को वह फ़ीते से नाप रहा था, उसी पत्थर की दीवार की भांति निःशब्द बैठा रहा।

इस समय एक और मज़ेदार बात हुई।

पहरा बदला। नया पहरेवाला आया। उसका चेहरा भयानक, स्वर तीव्र, मानों यमदूत ही हो!

पहरेवाले ने कहा, "क्योंजी तुम्हारे मन में कुछ दया-माया भी है या नहीं?"

मैंने कहा, "नहीं।"

मेरे स्वर में एक तीक्ष्णता थी!—फिर भी वह हटले

वाला थोड़े ही था! उसने कहा, "एक बात कहता हूँ, सुनो!"

मैंने कहा, "मैं अधिक रसिकता नहीं सह सकता!"

उसने कहा, "मैं अत्यन्त दुःखी आदमी हूँ भाई, बड़ा ही अभागा हूँ। यदि तुम मुझपर कुछ कृपा करो तो सदा के लिए तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा।"

सदा के लिए! 'सदा' तो मेरा सूर्यास्त के पहले ही खतम हो जायगा। मैंने कहा, "क्या तुम पागल हो? देखते नहीं, मैं मरने जा रहा हूँ। इस समय मैं किसी का क्या कर सकता हूँ!"

फिर भी वह छोड़नेवाला कब था—बोला, "अजी, सुनो भी तो!" उसके बाद चारों ओर देखकर धीरे-धीरे उसने कहा, "देखो भय्या, मेरा सारा सुख तुम्हारे ही हाथों में समझ लो। बड़ा ही ग़रीब हूँ मैं—यह काम बड़ी मेहनत का है—और तनख़्वाह भी कम है,—उसपर अपने पास एक घोड़ा भी रखना पड़ता है! नौकरी में सुख तो ऐसा ही है। इसीलिए भाईसाहब, कभी-कभी मैं लाटरी का टिकट ख़रीद लेता हूँ! आख़िर जीवन में कुछ करना तो चाहिए न! परन्तु देखो न, सात-आठ वर्ष में लाटरी के टिकटों

में इतना रुपया ख़र्च कर डाला, परन्तु एक पैसा भी लाभ न हुआ ! अगर ७६ नंबर का टिकट ख़रीदता हूँ, तो ७७ नंबर वाला बाज़ी मार लेता है; और ७७ नंबर खरीदा तो ७६ या ७८ नंबरवाले की तक़दीर खुल जाती है ! ख़ैर, तो अब मैंने क्या सोचा है, जानते हो ?" कहकर उसने मेरी ओर देखा।

मैंने कहा, "क्या सोचा है ?"

उसने कहा, "शायद तुम्हारे द्वारा मेरी कुछ सुविधा हो जाय !"

मैंने ताज्जुब से उसकी ओर देखकर कहा,—"मेरे द्वारा सुविधा !"

उसने कहा, "हाँ, सब तुम्हारे ही हाथ में है ! देखो मर जाने के बाद मनुष्य भूत, भविष्यत्, वर्तमान सब देख-पाता है ! और तुम तो कुछ घण्टे बाद मरोगे ही। इसीलिए तो कह रहा था कि क्या जानते हो, मुझे यदि उस समय ठीक-ठीक टिकट नंबर बतला दो तो उसी नंबर का टिकट खरीदूँ ! बस, रातोंरात बड़ा आदमी बन जाऊँ। इस नौकरी को छोड़ दूँ और ख़ूब गुलछर्रे उड़ाऊँ !—देखो भूत से मैं डरता नहीं। समझे न ? कोई बाधा नहीं है। मेरा नाम

कार्सेपायिकर है। बी नंबर बारक, २६ नंबर का पलंग—याद रहेगा न ? तो आज ही रात को आकर बतला जाना। हाँ भय्या, यह उपकार तो तुम्हें करना ही पड़ेगा !"

मैं उसकी बात का उत्तर न देता, प्रवृत्ति भी नहीं थी। परन्तु एक उन्मत्त आशा मेरे मन में जग उठी—एकबार आखरी कोशिश ! मैंने कहा—"देखो धन चाहते हो ?"

"हाँ-हाँ, और कह क्या रहा हूँ ?"

मैंने कहा—"अच्छी बात है। मैं तुम्हें बहुत धन दूँगा, यदि एक काम कर सको।"

उसकी आँखें लोभ से चमक उठीं। उसने कहा, "कहो अभी करूँगा—चाहे जैसा भी सख़्त काम हो, पीछे नहीं हटूँगा।"

मैंने कहा, "केवल हम दोनों को आपस में पोशाक बदलनी होगी।—बस, और कुछ नहीं।"

"बस, यही काम ! ओह, अभी करता हूँ।" यह कहकर वह अपने कोट के बटन खोलने लगा।

मैं उठ खड़ा हुआ। छाती धड़कने लगी। एक मिनट का भी विलम्ब नहीं—नहीं तो सब नष्ट हो जायगा। ओह भगवान—धन्य हो तुम ! पल भर के अन्दर कल्पना-नेत्र के सामने मैंने देखा, मेरे सामने सब दरवाज़े खुले हुए हैं—कहीं

में इतना रुपया ख़र्च कर डाला, परन्तु एक पैसा भी लाभ न हुआ ! अगर ७६ नंबर का टिकट ख़रीदता हूँ, तो ७७ नंबर वाला बाज़ी मार लेता है; और ७७ नंबर ख़रीदा तो ७६ या ७८ नंबरवाले की तक़दीर खुल जाती है ! ख़ैर, तो अब मैंने क्या सोचा है, जानते हो ?" कहकर उसने मेरी ओर देखा।

मैंने कहा, "क्या सोचा है ?"

उसने कहा, "शायद तुम्हारे द्वारा मेरी कुछ सुविधा हो जाय !"

मैंने ताज्जुब से उसकी ओर देखकर कहा,—"मेरे द्वारा सुविधा !"

उसने कहा, "हाँ, सब तुम्हारे ही हाथ में है ! देखो मर जाने के बाद मनुष्य भूत, भविष्यत्, वर्तमान सब देख-पाता है ! और तुम तो कुछ घण्टे बाद मरोगे ही। इसीलिए तो कह रहा था कि क्या जानते हो, मुझे यदि उस समय ठीक-ठीक टिकट नंबर बतला दो तो उसी नंबर का टिकट ख़रीदूँ ! बस, रातोंरात बड़ा आदमी बन जाऊँ। इस नौकरी को छोड़ दूँ और ख़ूब गुलछर्रे उड़ाऊँ !—देखो भूत से मैं डरता नहीं। समझे न ? कोई बाधा नहीं है। मेरा नाम

कार्सेपापिकर है। श्री नंबर बारक, २६ नंबर का पलंग—याद रहेगा न ? तो आज ही रात को आकर बतला जाना। हाँ भय्या, यह उपकार तो तुम्हें करना ही पड़ेगा !"

मैं उसकी बात का उत्तर न देता, प्रवृत्ति भी नहीं थी। परन्तु एक उन्मत्त आशा मेरे मन में जग उठी—एकबार आखरी कोशिश ! मैंने कहा—"देखो धन चाहते हो ?"

"हाँ-हाँ, और कह क्या रहा हूँ ?"

मैंने कहा—"अच्छी बात है। मैं तुम्हें बहुत धन दूँगा, यदि एक काम कर सको।"

उसकी आँखें लोभ से चमक उठीं। उसने कहा, "कहो अभी करूँगा—चाहे जैसा भी सख्त काम हो, पीछे नहीं हटूँगा।"

मैंने कहा, "केवल हम दोनों को आपस में पोशाक बदलनी होगी।—बस, और कुछ नहीं।"

"बस, यही काम ! ओह, अभी करता हूँ।" यह कहकर वह अपने कोट के बटन खोलने लगा।

मैं उठ खड़ा हुआ। छाती धड़कने लगी। एक मिनट का भी विलम्ब नहीं—नहीं तो सब नष्ट हो जायगा। ओह भगवान—धन्य हो तुम ! पल भर के अन्दर कल्पना-नेत्र के सामने मैंने देखा, मेरे सामने सब दरवाज़े खुले हुए हैं—कहीं

में इतना रुपया ख़र्च कर डाला, परन्तु एक पैसा भी लाभ न हुआ ! अगर ७६ नंबर का टिकट ख़रीदता हूँ, तो ७७ नंबर वाला बाज़ी मार लेता है; और ७७ नंबर ख़रीदा तो ७६ या ७८ नंबरवाले की तक़दीर खुल जाती है ! ख़ैर, तो अब मैंने क्या सोचा है, जानते हो ?" कहकर उसने मेरी ओर देखा।

मैंने कहा, "क्या सोचा है ?"

उसने कहा, "शायद तुम्हारे द्वारा मेरी कुछ सुविधा हो जाय !"

मैंने ताज्जुब से उसकी ओर देखकर कहा,—"मेरे द्वारा सुविधा !"

उसने कहा, "हाँ, सब तुम्हारे ही हाथ में है ! देखो मर जाने के बाद मनुष्य भूत, भविष्यत्, वर्तमान सब देख-पाता है ! और तुम तो कुछ घण्टे बाद मरोगे ही। इसीलिए तो कह रहा था कि क्या जानते हो, मुझे यदि उस समय ठीक-ठीक टिकट नंबर बतला दो तो उसी नंबर का टिकट ख़रीदूँ ! बस, रातोंरात बड़ा आदमी बन जाऊँ। इस नौकरी को छोड़ दूँ और ख़ूब गुलछर्रे उड़ाऊँ !—देखो भूत से मैं डरता नहीं। समझे न ? कोई बाधा नहीं है। मेरा नाम

कासेंपायिकर है। बी नंबर बारक, २६ नंबर का पलंग—याद रहेगा न ? तो आज ही रात को आकर बतला जाना। हाँ भय्या, यह उपकार तो तुम्हें करना ही पड़ेगा !"

मैं उसकी बात का उत्तर न देता, प्रवृत्ति भी नहीं थी। परन्तु एक उन्मत्त आशा मेरे मन में जग उठी—एकबार आखरी कोशिश ! मैंने कहा—"देखो धन चाहते हो ?"

"हाँ-हाँ, और कह क्या रहा हूँ ?"

मैंने कहा—"अच्छी बात है। मैं तुम्हें बहुत धन दूँगा, यदि एक काम कर सको।"

उसकी आँखें लोभ से चमक उठीं। उसने कहा, "कहो अभी करूँगा—चाहे जैसा भी सख्त काम हो, पीछे नहीं हटूँगा।"

मैंने कहा, "केवल हम दोनों को आपस में पोशाक बदलनी होगी।—बस, और कुछ नहीं।"

"बस, यही काम ! ओह, अभी करता हूँ।" यह कह-कर वह अपने कोट के बटन खोलने लगा।

मैं उठ खड़ा हुआ। छाती धड़कने लगी। एक मिनट का भी विलम्ब नहीं—नहीं तो सब नष्ट हो जायगा। ओह भगवान—धन्य हो तुम ! पल भर के अन्दर कल्पना-नेत्र के सामने मैंने देखा, मेरे सामने सब दरवाज़े खुले हुए हैं—कहीं

भी बाधा नहीं है—मुक्त आकाश के नीचे मैं खड़ा हूँ—सिर के ऊपर से पक्षियों का दल गीत गाते हुए उड़ रहा है। स्निग्ध शीतल वायु का स्पर्श भी मानों मैंने अनुभव किया। वह—एक जीवन ही नया था!

अकस्मात् पहरेवाला रुक गया। कहा,—"ओह, समझ गया तुम्हारा मतलब, भागना चाहते हो?"

गले को साफ़ कर मैंने कहा, "और तुम्हें रुपया काहे का दूँगा?"

वह फिर अपने कोट के बटन लगाने लगा। मेरे हृदय के भीतर एक बिजली दौड़ गई—सिर का ख़ून गर्म हो गया।

उसने कहा, "नहीं, यह कैसे हो सकता है? यह काम मैं नहीं कर सकता। यह झंझट है—मर कर ही तुम नम्बर बतला देना, इस प्रकार से भागकर—अरे, राम राम!"

मैं बैठ गया। पैर काँप रहे थे। आशा नहीं है, कोई आशा नहीं है! निराशा की गम्भीर वेदना में साँस तक रुकने लगी।

दोनों हाथों से मुँह ढककर मैं बैठा था—अतीत की सारी बातें याद आ रही थीं। स्वप्न की भाँति विचित्र और मधुर किशोरावस्था की बातें! दुर्भावनायें और दुश्चिंताओं का भारी काँटा, साथ ही वे बातें—मानों शुभ्र-सुन्दर फूलों का एक ढेर!

प्रफुल्ल मुख, निश्चिन्त हृदय, उत्साह से भरा हुआ जीवन—वे कैसे मधुर दिन थे! बग़ीचे में दौड़-धूप, साथियों का निर्मल प्रेम, वह एक सुख का साम्राज्य! उसके बाद किशोरावस्था के स्वप्न-राज्य में नवीन प्रकाश का उन्मेष! निराले कानन में वह मेरी तरुणी बाला!

बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बे केश, गौर-वर्ण, गुलाबी अधर—अपूर्व रूपवती पेया! बग़ीचे में हम दोनों खेलते थे—हँसी, गीत, गपशप!

कलह का भी अन्त न था। उसका स्वभाव था शान्त और मधुर! घोंसले से पक्षी चुराकर जब मैं धीरे-धीरे पेड़ पर से उतरता था, तब उसकी म्लान आँखें मेरी ओर देखती रहती थीं। उस दिन उसने कातर भाव से कहा, "क्यों तुम घोंसले से छोटे-छोटे बच्चे चुराते हो? अहा! तुम बड़े निर्दय हो।"

मैंने ऐसे वीरत्व का कार्य किया! कहाँ तो मेरी प्रशंसा करनी चाहिए, और यह कर रही है मेरा तिरस्कार! क्रोध से उस पक्षी को उसीके मुँह पर दे मारा। घर लौटकर जब उसकी माँ ने पूछा, "तेरे मुँह पर यह काहे का दाग़ है?" झट से उसने उत्तर दे दिया, "गिर पड़ी थी।"

उसके बाद कितने ही दिन वह मेरे साथ-साथ नदी-किनारे घूमती रही है। गति कभी तो धीरे और कभी द्रुत! तीर पर से नदी की तरङ्गों को देखते थे—संध्या उतर आती थी, चारों ओर धीरे-धीरे अंधकार से अस्पष्ट होने लगता था। मृदु संगीत की भाँति नदी का जल पछाड़ खाकर किनारे पर आ गिरता था। हमारे कण्ठ का स्वर भी मृदु हो जाता था। कितनी ही बातें थीं—देश की, विदेश की, प्रेम की, प्रणय की। कभी-कभी लज्जा से उसका मुख लाल

हो उठता था—नहीं, लाल नहीं, शायद गुलाबी !'

वह गरमी के दिनों की बात है। शाम के वक्त बग़ीचे में बादाम के पेड़ के नीचे हम बैठे थे।

अचानक पेया के हाथ से रूमाल गिर पड़ा। मैंने उसे उठाकर उसके हाथ में दिया—स्पर्श से हाथ काँप उठा !

पेया कह उठी, "आओ ज़रा दौड़ें।" वह दौड़ी—केश के गुच्छे झालरों की भाँति झूल रहे थे, नाच रहे थे—गर्दन पर कुछ अजब लाल रङ्ग था ! काले बादलों पर मानों बिजली की एक रेखा थी !

एक कुँए के पास बैठ गई। ललाट पर मोती की भाँति पसीने की बूँदें ! मैं उसकी बग़ल में आकर बैठा। वह हाँफ रही थी। साँस कुछ रुक रहा था। मैंने उसकी ओर देखा।

पेया ने कहा, "कुछ पढ़ो ! अभी उजेला है।—तुम्हारे पास किताब हो तो निकालो, जेब में होगी ?"

मेरी जेब में एक उपन्यास था। मैंने उसे निकाला। मेरे कंधे पर सिर रखकर वह उसे पढ़ने लगी। पढ़ने-लिखने में वह बहुत तेज़ थी; उसकी बुद्धि भी अत्यन्त तीव्र थी।

कुछ देर पढ़ने के बाद उसने मेरी ओर देखकर पूछा, "तुम सुन भी रहे हो या नहीं ?" सचमुच मैं केवल उसकी ओर देख रहा था—सुनने की फ़ुर्सत ही कहाँ थी !

उसके सिर उठाते ही हम दोनों का केशाग्र मिल गया ! उसकी साँस का स्पर्श मैंने अपने गालों पर किया। साथ ही हम दोनों के ओठ भी मिल गये।

उसके बाद फिर जब पुस्तक को खोला, उस समय आसमान पर तारिकाओं का दल हम दोनों को देखकर हँस रहा था।

घर लौटकर वह अपनी माँ से बोली, "माँ, आज हम दोनों बहुत दौड़े हैं।" मुझसे कुछ कहा न गया। उन्होंने पूछा, "तुम चुप क्यों हो ?"

चुप क्यों हूँ ? आनन्द और हर्ष की धारा मेरे हृदय में बह रही थी। उस स्निग्ध-सुन्दर संध्या की बात इस जीवन में कभी भूल नहीं सकता।

यह जीवन—हाय, अब कितनी देर को है ?

मालूम नहीं क्या वजा है ! सिर के अन्दर चिन्ताओं की राशि कोलाहल कर रही थी ।

अपराध की बात सोचते ही काँप उठता हूँ—परन्तु, इस अनुताप से अब क्या लाभ है !

सज़ा के पहले पश्चात्ताप का जो बोझ हृदय को भारी कर रहा था, वह अब कहाँ है ? मृत्यु की बात को छोड़कर और सोचने का अवसर भी कहाँ है ? अतीत की बात सोचने पर भी फाँसी की रस्सी आँखों के सामने नाचती है । वह सुन्दर शैशव, वह मधुर किशोरावस्था—आह, आज इस तरह फाँसी के तख्ते पर लोट पड़ेंगे ? अतीत और वर्त्तमान के बीच एक रक्त-सागर का व्यवधान रह गया । जो मेरी जीवनी पढ़ेगा, शायद घृणा से नाक-भौं सिकोड़ेगा ।

परन्तु सचमुच ही क्या मैं ऐसा ही बुरा हूँ ? नहीं, कभी नहीं।

कुछ ही घण्टों में सारी चिन्ताओं और भावनाओं का अंत हो जायगा, फिर भी उन दिनों को बीते अभी बहुत समय नहीं हुआ, जब नदी के किनारे, पेड़ों की छाया में, ऊपर से झड़े हुए पत्तों को रौंदता हुआ मैं स्वच्छन्द घूमता था !

मेरे इस रुद्ध कमरे के पास ही अनेक घर अभी तरुण-तरुणियों के मुख-गुंजन और शिशुओं के उच्छ्वास से पूर्ण होंगे। आशा-निराशा और सुख-दुःख का भार लेकर अभी भी नर-नारी बाहर थेथ पर चल रहे होंगे। फेरीवाला चिल्लाकर फेरी दे रहा होगा। किसी कुंज में युवक अपनी प्रियतमा को आलिंगन में आबद्ध कर प्रगाढ़ प्रेम के साथ चुम्बन कर रहा होगा। जीवन का फ़व्वारा चारों ओर छूट रहा होगा। और मैं ?—

पुरानी बातें ही याद आती हैं। नौटरडम में घण्टा देखने आये थे। उस समय मैं बालक था। अंधकार में टेढ़ी-मेढ़ी असंख्य सीढ़ियों को पार करते-करते मेरे सिर में चक्कर आ गया था। ऊपर चढ़कर देखा, सारे पेरिस शहर को मानों किसी ने ग़लीचा बनाकर पैरों के तले बिछा दिया है !

उसके बाद घण्टे को देखा। कितना भारी घण्टा था ! मैं शहर देखने में तन्मय था। उस ऊँचे मीनार परसे नीचे सड़क पर चलनेवाले लोग बिलकुल छोटे-छोटे खिलौने मालूम होते थे। वही सब मैं देख रहा था कि भीषण शब्द के साथ वह घन्टा बज उठा। आवाज़ से मीनार काँप उठा—मेरे हाथ भी काँप उठे। मैं ज़मीन पर बैठ गया। घण्टे की ध्वनि बन्द होने पर भी प्रतिध्वनि उस वक्त तक गूँज रही थी !

आज भी ठीक वैसा ही मालूम हो रहा है। घंटा-ध्वनि तो नहीं है, परन्तु चारों ओर कोलाहल मच रहा है। एक अस्पष्ट शब्द की झंकार से कान भर रहा है। ललाट की नसें धक-धक कर रही हैं। छाया की भाँति अपने चारों ओर मैं देख रहा हूँ, असंख्य नर-नारी हर्ष और कोलाहल करते हुए चल-फिर रहे हैं। वह ध्वनि उन्हींकी उल्लास-ध्वनि है न ?

भिला-होटल के ऊँचे गुम्बज की घड़ी भी दिखाई पड़ रही है। प्ले-दी-ग्रीह्व के कठोर पत्थर की दीवारों की तरफ ही वह घड़ी देख रही है। कितने दिनों की पुरानी वह दीवार—वह पुरानी घड़ी इसकी प्यारी सखी मालूम होती है।

शेष हो जायगा ! एक मुहूर्त्त के अन्दर इतना बड़ा जीवन ! ये कुतूहली दर्शक, ये अनगिनती राज-सैनिक, ये भला उस यन्त्रणा को क्या समझें ? वह भीषण डोर एक मिनट के अन्दर गले को दाब देगी—शरीर का सारा रक्त स्तम्भित हो कर स्तब्ध हो जायगा ! समुद्र की गति रुद्ध होने पर रोष से वह जैसा फूलने लगता है, बाधा पाकर सारा अन्तर बाहर निकलने के लिए एक विराट् द्वंद्व मचायगा। हाय अभागे ! उस भीषण द्वंद्व में ही सारा खेल ख़त्म हो जायगा भीतर के साथ बाहर का प्रबल संग्राम—ओह, कैसा भयंकर होगा ?

राजा की बात भी बार-बार याद आ जाती है। मन से यह चिन्ता किसी प्रकार भी दूर नहीं होती। दोनों कानों में मानों कोई कह रहा है, "राजा ? इस समय इसी शहर के एक बड़े भारी महल में सजे-सजाये कमरे के अन्दर वह बैठे हैं। मेरी ही भाँति असंख्य पहरेदार उनके दरवाज़े पर खड़े हुए पहरा दे रहे होंगे।" फ़र्क़ क्या है ? वह प्रतिष्ठा के उच्च आसन पर, और मैं बिलकुल नीचे, बस इतना ही फ़र्क़ है। उसके जीवन का प्रति मुहूर्त कैसा गरिमा-पूर्ण, महिमा-मण्डित, यश और उल्लास से भरा-पूरा है। चारों

और प्रेम, भक्ति, श्रद्धा का निर्झर झर है। उनके सामने तीव्र स्वर शांत हो जाता है, दर्पित मुण्ड नीचा हो जाता है। उनकी आँखों के सामने स्वर्ण और रौप्य की सामग्री चकाचौंध लगा देती है। सभासद-वेष्टित राज-सिंहासन पर बैठकर वह आज्ञा दे रहे हैं—ससंभ्रम लोग उसका पालन कर रहे हैं। कभी शिकार, कभी व्यसन, कभी नृत्य और कभी गीत! केवल मुँह से बात निकालने भर की देरी है कि असंख्य लोग विलास की सामग्री एकत्र करने के लिए तन्मय हो उठेंगे!

राजा! वह भी मेरी ही भाँति खून और मांस का बना हुआ जीव है—क्षुद्र मनुष्य, यह राजा! फिर भी उसकी लेखनी के एक इशारे पर मेरी फाँसी की रस्सी रुक सकती है! जीवन, स्वाधीनता, ऐश्वर्य, गृह–सारे सुखों को पल भर के अन्दर प्राप्त कर सकता हूँ—और यह भी सुना है कि "हमारे राजा दयालु हैं," मगर फिर भी मेरी जान को बचाना उनकी दया का दुरुपयोग होगा! हाय रे दया की परिभाषा!!

अंधकार में मेरा सिर-हीन धड़ पड़ा हुआ है और क़ब्र के चारों ओर भूत-प्रेतों का उपद्रव मचा हुआ है। वह एक फाँसी की हवा से संसार के एक कोने का परदा फट गया है। दानवों का दल बड़े समारोह के साथ उसमें घुस रहा है। चारों ओर कंकाल का पहाड़ लगा हुआ है, नीचे खून की नदी बह रही है। सिर के ऊपर आसमान में भी अंधेरा है। तारे आग के परिंदे बनकर इधर-उधर उड़ रहे हैं।

मेरे पहले जिन्होंने फाँसी के तख्ते पर जान दी है, वे मेरा इन्तज़ार कर रहे हैं; उनकी छाया मैं अभी भी देख रहा हूँ। रक्त-हीन शीर्ण-देह, धँसी हुई आँखें, सूखा हुआ मुँह— क्या ही भयानक हैं! प्रकाश और अन्धकार के बीच खड़े होकर वे धीरे-धीरे कुछ कह रहे हैं। उनके मुख पर हँसी का नाम तक भी नहीं है। है केवल एक आतंक—एक अधीर उद्वेग! कहीं कुछ नज़र नहीं आता। सीला-होटल की वह निर्मम घड़ी मेरी ओर देखकर अट्टहास करती हुई मुझे अन्तिम समय की याद दिला रही है। संसार में कुछ भी नहीं है—रत्ती भर करुणा तक नहीं!

इसी तरह की बातें हृदय के भीतर द्वंद्व मचा रही हैं। एक मिनट को भी नहीं छोड़तीं।

हाय, है क्या यह मृत्यु ? कौन है यह ? आत्मा के
इसका ऐसा विरोध क्यों है ? एक आघात से वह जब
को धूल पर लिटा देती है—तब मन की यह चेतना,
अनुभूति; यह प्रेम, स्नेह, दया, यह सर्वव्यापी चित्र
सबको वह कहाँ उड़ा देती है ? पृथ्वी—कठोर पृथ्वी को
इतनी-सी भी ममता नहीं है ? क्या इसमें वह शक्ति
है कि मृत्यु को जय कर अपने हाथ से बनाये हुए जीवों
रक्षा करे ? भगवान्, तुम्हारी यह सृष्टि-लीला कैसी वि
है ? कैसा निष्ठुर है यह रहस्य ! कैसा निर्मम खेल है :

एक बार निद्रा-देवी की आराधना करने के लिए बिस्तर पर लेट गया था।

सब खून मानों सिर के ऊपर आकर जम गया। जीवन में यही मेरी अन्तिम निद्रा होगी!

स्वप्न देखा।

स्तब्ध गम्भीर रात! दो मित्रों के साथ बैठक में बैठा था। बगलवाले कमरे में स्त्री सो रही है—मेरी उसकी छाती से सटकर पड़ी हुई है!

बहुत धीरे-धीरे बातें कर रहा था—कोई जाग न जाय, डर न जाय। अचानक एक शब्द, चौंक पड़ा! देखने के लिए उठा। अवश्य ही चोर आये हैं!

चारों ओर ढूँढ डाला। कोई नहीं है–किसीका
तक नहीं !

चिमनी के पीछे वह क्या है ! कौन ?

एक नारी—रूखे बाल मुँह के चारों ओर बिखरे
मुख पर एक कठिन भाव ! आँखें उसकी बन्द थीं !
पूछा, "तू कौन है ?"

उसने कुछ जवाब न दिया। हम लोगों ने कहा, "
बतला तू कौन है ?" फिर भी चुप ! आँख भी वैसी ही
मित्र ने कहा, "उसके मुँह पर रोशनी डालो।" मैंने
उठाकर उसके मुँह की ओर की। फिर भी चुप ! मैंने
"बात क्यों नहीं करती ?" फिर भी अचंचला ! हम
परेशान ! राम कैसी आफ़त है यह !

मित्र ने कहा, "रोशनी को और पास लाओ
बत्ती को बिलकुल आँखों के पास ले गया। उसने आँखें
दीं। ओह, कैसी तीव्र थी उसकी दृष्टि ! मैंने आँखें बन
लीं। साथ ही हाथ में कुछ जलन हुई। आँखें खोलकर
तो जेलखाना। मेरी शय्या के सामने आचार्य खड़े हैं !

मैंने पूछा, "क्या मैं बहुत देर तक सोया हूँ ?" उ
कहा, "हाँ, एक घण्टा सोये हो। तुम्हारी कन्या को मैं

हूँ, मेरी को। देखोगे नहीं? तुम्हारे जगाने की कोशिश उन्होंने की थी। जब तुम नहीं जगे, तब मुझे बुलाया है। तुम्हारी कन्या मेरी—"

मैं चिल्ला उठा, "मेरी! मेरी लड़की मेरी! कहाँ है वह? जल्दी बतलाइए! लाइए, उसे मेरी गोदी में दीजिए, मैं उसे ज़रा छाती से लगा लूँ।"

मेरी ! उसका रंग गुलाब के फूल जैसा, अंगूर की तरह नरम उसके ओठ—अहा, मेरी प्यारी मेरी !

काली पोशाक में वह कैसी सुन्दर मालूम हो रही थी। मैंने उसे अपनी गोद में उठा लिया, कपोलों पर हज़ारों बार चुम्बन किया।

विस्मय के साथ वह मेरी ओर देख रही थी। आँखों में वह कैसा भाव ! मानों अत्यन्त कातर है ! बीच-बीच में वह कमरे के एक कोने में खड़ी हुई आया की ओर देख रही थी। आया रो रही थी।

मेरी को पुचकारकर, मैंने उसे अपनी छाती पर दबा लिया। रुद्ध स्वर से मैंने कहा, "मेरी, मेरी प्यारी मेरी !"

अत्यन्त मृदु-भाव से मुझे एक धक्का देकर उसने

अपना मुँह हटा लिया, और कहा, 'आह! आप छोड़िए मुझे!'

'आप!'

क़रीब एक साल बाद यह साक्षात्! इस एक वर्ष में मेरी मुझको भूल गई। मेरी बातें, मेरा मुख, मेरा आदर-भाव, सब उसके मन से कहाँ उड़ गये! परन्तु इसमें उसका अपराध क्या?

मेरी ये मूछें, सिर में जटा के बाल, शीर्णमुख, क़ैदी की पोशाक़, रुद्ध कण्ठ-स्वर—भला, वह मुझे कैसे पहचानेगी?

जो मुझे याद रक्खेगी, यह सोचकर मैं कुछ शान्ति पा रहा था, वह भी मुझे भूल बैठी है! हाय रे मेरे भाग्य!!

आज मैं उसका 'बाबू' नहीं हूँ। अपनी बेटी के मुँह से पितृ-सम्बोधन, फूल की पँखड़ी की भाँति उसके हास्यमय मुख में वह मधुर सम्बोधन 'बाबू'—अहा, आज मैं उससे भी वंचित हूँ!

कैसा दारुण अभिशाप है!

इस समय जीवन के इस रोष-मुहूर्त्त में एक बार, केवल एक बार, उस सम्बोधन के बदले, अपनी बेटी के मुँह से वह आह्वान यदि एक बार पल भर के लिए भी सुन लूँ, तो

चालीस वर्ष का वह सुदीर्घ जीवन मैं हँसते हुए विसर्जन कर दूँ।

"मेरी !—" उसके दोनों हाथों को अपने हाथों से दबाकर मैंने कहा, "मेरी प्यारी बेटी मेरी, क्या मुझे नहीं पहचानती ?"

अपनी तेज़ आँखों को उठाकर कुछ ग़ुस्से से उसने कहा, "नहीं !"

मैंने कहा, "देखो, अच्छी तरह देखो, मैं कौन हूँ !!'

उसने कहा, "कौन हैं आप, मैं क्या जानूँ। होंगे कोई भले आदमी !" कैसा अम्लान था उसका कण्ठ-स्वर !

हाय, संसार में जिसकी ज़रासी हँसी देखने के लिए मैं सब-कुछ कर सकता हूँ, उसीके मुँह से यह कैसी बात ? उसकी आँखों में यह कैसी दृष्टि ?

मैंने पूछा, "मेरी, तुम्हारा बाप है ?"

उसने कहा, "हैं ! क्यों ?"

मैंने कहा, "कहाँ है वह ?"

मेरी ओर देख कर उसने कहा, "वह; कहिए !"

हाय, मेरी प्यारी बेटी ! हाय रे, शीर्ण पितृ-हृदय की व्याकुलता ! मैंने फिर पूछा, "कहाँ है वह ?"

मेरी की आँखें सजल हो गईं। उसने रुद्ध कण्ठ से कहा, "स्वर्ग में!"

मैंने कहा, "स्वर्ग में! जानती हो मेरी, वह स्वर्ग कहाँ है? उस स्वर्ग का अर्थ क्या है?"

मेरी की आँखों से आँसू टपक रहे थे, मैंने उसे पुचकारा।

मैंने कहा, "मेरी, एक बार ईश्वर का स्मरण करो।"

उसने कहा, "नहीं, महाशय, दिन-दोपहर में बिना काम उनको विरक्त नहीं करना चाहिए। ठीक सन्ध्या के समय मैं प्रार्थना करूँगी।"

मेरा चित्त व्याकुल हो रहा था! यह लड़की—यह मेरी—मेरी ही कन्या है! हाय, आज यह मेरी नहीं रही—मैं आज इसके पास से बहुत दूर हट गया हूँ। नहीं-नहीं,—जैसे भी हो, इसे समझाऊँगा कि मैं ही उसका 'बाबू' हूँ। स्वर्ग में नहीं, नरक में नहीं, उसीके सामने, इसी जेल के अन्दर। यह मैं फाँसी के लिए तैयार बैठा हूँ।

मैंने कहा, "मेरी, तुम पहचानती नहीं, मैं तुम्हारा पिता हूँ।"

मानों कुछ डाटकर उसने उत्तर दिया, "नहीं—"

मैंने कहा, "प्यारी बेटी, क्यों मुझे भूल गई? देखो,

अच्छी तरह देखो, वह घर पर गुलाब की क्यारियों के पास बैठकर मैं तुम्हें कहानियाँ सुनाता था—परी की कहानी—सियार की कहानी—"

मेरी के मुख को फिर मैंने छाती से लगा लिया।

मेरी ने कहा, "आह! छोड़ दो, लगती है।"

मैंने उसको अपने घुटने पर बैठाकर पूछा, "पढ़ सकती हो?"

"हाँ!"

एक अख़बार खोलकर मैंने उसके सामने रक्खा। वह पढ़ने लगी, "प्राण-दण्ड का मुलज़िम—"

अकस्मात् मैंने काग़ज़ को छीन लिया। अख़बार वह अपने साथ लाई थी! अख़बारवालों ने मेरी फाँसी की सूचना बड़े-बड़े अक्षरों में छापी थी, जिससे किसी की नज़र उसपर से चूके नहीं और इतना बड़ा समारोह देखने के लिए दर्शकों का दल टूट पड़े।

अपने मन का भाव मैं स्याही से लिखकर समझाने में असमर्थ हूँ। मेरी यह सूक्ष्म मूर्ति देखकर, भय से मेरी रोने लगी। उसने कहा, "लाओ, मेरा काग़ज़ लाओ, मैं जहाज़ बनाऊँगी।"

अच्छी तरह देखो, वह घर पर गुलाब की क्यारियों के पास बैठकर मैं तुम्हें कहानियाँ सुनाता था—परी की कहानी—सियार की कहानी—"

मेरी के मुख को फिर मैंने छाती से लगा लिया।

मेरी ने कहा, "आह! छोड़ दो, लगती है।"

मैंने उसको अपने घुटने पर बैठाकर पूछा, "पढ़ सकती हो?"

"हाँ!"

एक अख़बार खोलकर मैंने उसके सामने रक्खा। वह पढ़ने लगी, "प्राण-दण्ड का मुलज़िम—"

अकस्मात् मैंने काग़ज़ को छीन लिया। अख़बार वह अपने साथ लाई थी! अख़बारवालों ने मेरी फाँसी की सूचना बड़े-बड़े अक्षरों में छापी थी, जिससे किसी की नज़र उसपर से चूके नहीं और इतना बड़ा समारोह देखने के लिए दर्शकों का दल टूट पड़े।

अपने मन का भाव मैं स्याही से लिखकर समझाने में असमर्थ हूँ। मेरी यह सूक्ष्म मूर्ति देखकर, भय से मेरी रोने लगी। उसने कहा, "लाओ, मेरा काग़ज़ लाओ, मैं जहाज़ बनाऊँगी।"

आया के हाथ में अख़बार को लौटाकर मैंने कहा, "इसको लेती जाओ, और घर पर कहना......।" इसके आगे कुछ कह न सका। क्या सन्देशा भेजूँ! खिड़की के पास एक कुर्सी पर बैठ गया। आँखों को अपने दोनों हाथों से ढक लिया!—सिर के भीतर रक्त का श्रोत भीषण रूप से नाच रहा था!

कहाँ हैं वे यमलोक के भयानक दूत? आने दो, अब क्या है! संसार में मेरा कोई नहीं है—जीने की अब इच्छा भी नहीं है। जिस संकल में मैं इस संसार के साथ बँधा हुआ था,—वह संकल टूट गई है! फिर अब यह माया-ममता क्यों?

आचार्य के हृदय में भी दया है, काराध्यक्ष भी पत्थर का आदमी नहीं है। आया जब मेरी को ले जाने लगी, तो उनकी आँखों से भी आँसू की बूँदें टपक पड़ीं।

शेष—अब सब शेष ! केवल साहस और बल ! पथ पर वियुक्त जनता—फाँसी के तख्ते के निकट बढ़ना—उसके बाद कहाँ रहेगा संसार—और, कहाँ रहूँगा मैं ?

कोई हँसेगा, कोई आनन्द से ताली बजायगा, कोई चिल्लायगा ! फिर भी कौन जानता है, इन दर्शकों में भी कितने ही आदमी एक दिन मेरे ही पथ के पथिक बन सकते हैं ! आज तो ये मेरा तमाशा देखने आये हैं, एक दिन इनमें से कोई न कोई या कितने ही दूसरों को तमाशा दिखाने जायँगे—!

'मेरी प्यारी मेरी !'

नहीं, वह तो आया के साथ चली गई ! गाड़ी की खिड़की में से वह इस दर्शकों की भारी भीड़ को ज़रूर देखेगी। समझेगी कुछ तमाशा होगा। इस "भले आदमी" की उसे याद भी न रहेगी। वह नहीं जानेगी कि उसके इस "भले आदमी" को देखने के लिए ही इस तमाशे का बन्दोबस्त किया गया है। और वह 'भला आदमी' दूसरा कोई नहीं है, उसीका वह 'स्वर्गवासी बाबू' है !

उसके लिए मैं लिख जाऊँगा। एक दिन वह पढ़कर समझेगी। पन्द्रह वर्ष बाद तब वह आज के इस मुहूर्त की बात सोचकर रोवेगी।

हाँ, अपनी सारी कहानी उसके लिए लिख जाऊँगा ! सारी बातें लिख जाऊँगा—मेरा इतिहास—क्यों आज देश की छाती पर रक्ताक्षर से मेरा नाम लिखा जा रहा है, यह सब उस कहानी में मैं लिखूँगा।

भिला-होटल के कमरे से—

भिला-होटल !........मैं अब यहाँ आ गया हूँ । वह स्थान—वह है मेरी इस खिड़की के नीचे । बहुत आदमी इकट्ठे हुए हैं । कोई चिल्ला रहा है; कोई सीटी बजा रहा है; कोई हस रहा है ।

लाल रंग के उस खम्भे को देखकर छाती काँप रही है ।

वे कोन आ रहे हैं ? शायद समय हो गया । अब विलंब नहीं है । सारी देह काँप रही है । छः घण्टे से—छः महीनेसे जिस बात की चिन्ता लगातार कर रहा हूँ, वह मुहूर्त्त आ गया, परन्तु कितनी जल्दी !

एक छोटे कमरे में लाकर उन्होंने मुझे खड़ा कर

दिया। खिड़की के अन्दर से आस्मान नज़र आ रहा था। —चारों ओर कुआँ-सा है। मैं कुर्सी पर बैठ गया। कमरे में और भी तीन-चार आदमी थे। आचार्य भी थे। सहसा मेरे बालों में लोहे का ठण्डा स्पर्श! कैंची का शब्द! बाल नीचे मेरे पैरों पर आ गिरे! आस-पास सब की कानाफूसी! डाढ़ी मूँड दी गई!

आँख उठाकर देखा, क़ाग़ज़ और पेन्सिल लेकर एक आदमी प्रश्न कर रहा है। समझा, अखबारों का प्रतिनिधि है! कल के अख़बार के लिए "मैटर" इकट्ठा कर रहा है। अख़बारवालों की चाँदी है—ख़बर ज़बरदस्त है।

दो पहरेदारों ने आकर मेरा हाथ पकड़ा। मैं आचार्य के पीछे-पीछे चला।

बाहर का दरवाज़ा खुल गया।

लोगों की भीड़ इकट्ठी थी। चारों ओर से आवाज़ आई-'वह, वह, वह है!' सिपाही मेरे चारों ओर चल रहे हैं। राजा के योग्य सम्मान से मुझे ले जाया जा रहा है।—वाह-वाह, ख़ूब!

किसी ने कहा, "नमस्कार महाशय!" किसी और ने आवाज़ कसी, "आदाब अर्ज़ है।"

एक स्त्री ने कहा, "हाय, बेचारा !"

एक आदमी ने कहा, "टोपी खोल डालो, सम्मान दिखाओ।"

मुझे हँसी आई—हाय, ये टोपी ही खोल रहे हैं, मुझे सिर खोल देना पड़ेगा।

आचार्य के हाथ से 'क्रॉस' † लेकर मैंने छाती से लगाया। आग्रह के साथ भक्ति-गद्‌गद् कण्ठ से मैंने कहा—"क्षमा करो भगवान्, तुम्हीं पाप-तारण हो—आरतों के मित्र हो !"

नारियों की करुण समवेदना के स्वर कान में आये। मेरी तरुण अवस्था देखकर वे मेरे लिए दुःखी थीं।

सहसा मैं काँप उठा—सामने ही वह फाँसी का तख़्ता !

टनन्-टनन् करके चार बज रहे हैं।